# परिप्रेक्ष्य

## शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 24, अंक 3, दिसंबर 2017

**राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान**
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान (नीपा), 2017
(भारत सरकार द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956 की धारा 3
के अंतर्गत घोषित)

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में किया जाता है। इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह न्यूपा की वेबसाइट: www.nuepa.org पर नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक

**परिप्रेक्ष्य**

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान (नीपा)
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान (नीपा) के लिए कुलसचिव, नीपा द्वारा प्रकाशित तथा बचन सिंह, बी-275, अवन्तिका, सेक्टर-1, रोहिणी, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसेट होकर मै. पावर प्रिन्टर्स, नई दिल्ली में न्यूपा के प्रकाशन विभाग द्वारा मुद्रित।

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 24, अंक 3, दिसंबर 2017

# विषय सूची

*आलेख*

**जॉर्ज सकरापाउलस, क्लाउडियो मोंटेनेग्रो** एवं **हैरी एंथनी पैट्रीनोस**
विकासशील देशों में शिक्षा के वित्त पोषण की प्राथमिकता 1

**ऋतु बाला**
राष्ट्रीय पाठ्यचर्याओं में परीक्षा का विमर्श 15

**ऋषभ कुमार मिश्र**
प्रकृति के साथ सहजीवन की शिक्षा 31

**संजय शर्मा** एवं **धनंजय सिंह यादव**
समुदाय सहभागिता एवं शिक्षा नीति के अंत:संबंधों का नीतिगत विश्लेषण 35

*शोध टिप्पणी / संवाद*

**चित्ररेखा गौड़**
राष्ट्रीय एकता के विकास में शिक्षा की भूमिका 49

**संजीव कुमार शुक्ला**
विकलांग एवं सामान्य किशोर-किशोरियों के आत्मविश्वास का तुलनात्मक अध्ययन 59

**अश्वनी कुमार गर्ग**
विद्यालय स्तर पर गणित शिक्षण-अधिगम पर प्रशिक्षण कार्यक्रम का प्रभाव 71

**विरेन्द्र कुमार** एवं **शिरीष पाल सिंह**
महिलाओं के सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका 81

*समीक्षा लेख*

**कौशलेन्द्र प्रपन्न**
शिक्षा के नाम पर हो रहे बदलाव को समझना 93

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 24, अंक 3, दिसंबर 2017

# विकासशील देशों में शिक्षा के वित्त पोषण की प्राथमिकता#

**जॉर्ज सकरापाउलस* क्लाउडियो मोंटेनेग्रो एवं हैरी एंथनी पैट्रीनोस**

**सार-संक्षेप**

शिक्षा के स्तर के अनुसारऔसत निजी और सामाजिक प्रतिफल का आकलन करने के लिए हम 15 कम आय, निम्न-मध्यम आय और ऊपरी-मध्य आय वाले देशों के नवीनतम सर्वेक्षणों का उपयोग करते हैं । वित्तपोषण प्राथमिकताओं को स्थापित करने के लिए हम पूरे देश के प्रकार और वैकल्पिक निवेश के लिए प्रतिफल की तुलना करते रहे हैं। हमारे निष्कर्ष बताते हैं कि कम आय वाले देशों के लिए प्राथमिकता प्राथमिक स्तर पर स्कूली शिक्षा का विस्तार है। निम्न-मध्यम आय वाले देशों के लिए प्राथमिक स्तर पर आगे विस्तार के लिए औचित्य है। ऊपरी-मध्यम आय वाले देशों के लिए, द्वितीयक स्तर पर अतिरिक्त बढ़ावे के औचित्य की आवश्यकता है।

## परिचय

1950 के दशक के उत्तरार्ध से शिक्षा में निवेश पर प्रतिफल का अनुमान लगाया गया है। हालिया विश्लेषण और समीक्षा स्कूली शिक्षा के लिए विशेष रूप से उच्च शिक्षा के लिए एक उच्च निजी वापसी दिखाती है (मॉन्टेनेग्रो और पैट्रीनोस 2014, पीट, फिंक और फावजी 2015)। स्कूली शिक्षा में प्रतिफल का आकलन करने के लिए सामान्य दृष्टिकोण- माइनर समीकरण (पैट्रीनोस 2016) - शिक्षा के एक अतिरिक्त वर्ष के औसत पर मौद्रिक प्रतिफल दिखलाता है। जिन्हें शिक्षा नीति पर निर्णय लेना है, उन नीति निर्माताओं के लिए यह महत्वपूर्ण है। लेकिन ये अनुमान स्कूली शिक्षा के लिए निजी प्रतिफल प्रदान करते

*यूनिवर्सिटी आफ एथेंस, एथेंस, ग्रीस ई-मेल: gpsach@rcn.com

#प्रस्तुत आलेख विश्व शिक्षा के वित्तपोषण पर शिक्षा आयोग (2016) के लिए आगत हेतु तैयार किया गया था।

हैं, जबकि वापसी की सामाजिक दरों का अनुमान लगाने के लिए सरकार/सार्वजनिक लागत और अन्य लाभों की भी आवश्यकता होती है (सकरापाउलस 1995)। नीति निर्माताओं और संसाधनों के आवंटन में सामाजिक प्रतिफल अधिक उपयोगी होते हैं (सकरापाउलस और मैटसन 1998)।

इस आलेख में, हम निम्न और मध्यम आय वाले देशों के चयनित समूह के लिए शिक्षा के स्तर से निजी और सामाजिक प्रतिफल का अनुमान लगाते हैं। हम पूरे देश के प्रकार और वैकल्पिक निवेश के लिए प्रतिफल की तुलना करते हैं। हम स्कूली शिक्षा के स्तर और देश के प्रकार के माध्यम से शिक्षा के वित्त पोषण के लिए नीतिगत सिफारिशें करते हैं।

हम तर्क देते हैं कि कम आय वाले देशों के लिए, सामाजिक प्रतिफल इंगित करते हैं कि प्राथमिकता प्राथमिक स्तर पर स्कूली शिक्षा का विस्तार है। निम्न मध्यम आय वाले देशों के लिए, प्राथमिक स्तर पर आगे विस्तार के लिए औचित्य है। ऊपरी मध्यम आय वाले देशों के लिए, द्वितीयक स्तर पर अतिरिक्त औचित्य पर बल देना है।

## आंकड़ा

**लाभ:** विश्व बैंक (2016) देशों के वर्गीकरण के अनुसार हमने 15 निम्न, निचले-मध्य और ऊपरी-मध्य आय वाले देशों में नवीनतम घरेलू सर्वेक्षणों का उपयोग किया।

प्रत्येक समूह के देशों को उनके आकार और प्रत्येक शिक्षा-आयु वर्ग में अवलोकनों की संख्या के आधर पर चुना गया था ।

- कम आय: केन्या; कांगो लोकतांत्रिक गणराज्य; इथियोपिया; गाम्बिया; नेपाल
- कम-मध्य: इंडोनेशिया; श्री लंका; पाकिस्तान; वियतनाम; जाम्बिया
- ऊपरी-मध्य: अर्जेंटीना; ब्राजील; चीन; पनामा; वेनेजुएला

हमने श्रमिकों को आश्रित रोजगार आय के साथ चुना है। स्थानीय मुद्रा में कमाई 2012 विनिमय दर पर $यूएस में परिवर्तित कर दी गई ।

प्रत्येक देश समूह के लिए हमने शिक्षा के चार स्तरों के लिए आयु-शिक्षा-कमाई वृत्त का निर्माण किया - कोई स्कूली शिक्षा, प्राथमिक, माध्यमिक और तृतीयक नहीं। वृत्त देश के आबादी द्वारा भारित प्रत्येक देश समूह के भीतर के औसत थे, जिसके परिणाम अनुलग्नक 1 में शामिल ग्राफ में हैं (अनुलग्नक-2 में सरल वृत्त देखें)।

निम्नलिखित द्विघात कयरिमक (1) का उपयोग करके प्रत्येक स्कूली शिक्षा के लिए कमाई ($Y$) वृत्त को हटा दिया गया था:

$$Y = \text{ए} + \text{बी आयु} + \text{सी आयु}^2 \quad (1)$$

**लागत:** हमने स्कूलिंग और देश आय वर्ग के स्तर के आधार पर लागत का उपयोग किया है। लागत केंद्र सरकार, स्थानीय सरकार और निजी व्यय का संदर्भ देती है।

सभी देश समूहों के लिए हमने क्रमश: प्राथमिक, माध्यमिक और तृतीयक शिक्षा के लिए 6-6-4 साल का चक्र लिया है।

**तालिका-1**

**प्रति छात्र वार्षिक लागत और प्रति व्यक्तिआय, 2012 ($ यूएस)**

| शिक्षा का स्तर | कम आय | कम मध्यम आय | उच्च मध्यम आय |
|---|---|---|---|
| प्राथमिक | 68 | 234 | 1,276 |
| निम्न माध्यमिक | 135 | 299 | 1415 |
| उच्च माध्यमिक | 303 | 431 | 1,293 |
| उच्चतर माध्यमिक | 1,433 | 2,496 | 4763 |

*स्रोत:* शिक्षा आयोग (2016)

**प्रतिफल आकलन**

हमने शिक्षा के लिए निजी और सामाजिक प्रतिफल का अनुमान लगाने के लिए पूर्ण छूट पद्धति का उपयोग किया जहां शिक्षा के दिए गए स्तर में निवेश की वापसी की सामाजिक दर निम्न समीकरण (2) में $r$ के लिए हल करके पाई जाती है । उदाहरण के लिए, विश्वविद्यालय शिक्षा के मामले में चार साल तक चलने वाले और 42 वर्ष के एक कामकाजी जीवन में, $r$ से अनुमान है:

$$\sum_{t=1}^{42} \frac{(Y_u - Y_s)_t}{(1+r)^t} = \sum_{t=1}^{4} (Y_s + C_u)_t \ (1+r)^t \qquad (2)$$

$(Yu-Ys)_t$ विश्वविद्यालय के स्नातक (सबस्क्रिप्ट $u$) और माध्यमिक विद्यालय स्नातक (सबस्क्रिप्ट $s$, नियंत्रण समूह) के बीच समय $t$ पर आय का अंतर है। $C_u$ विश्वविद्यालय शिक्षा (शिक्षण शुल्क, किताबें) की प्रत्यक्ष लागत का प्रतिनिधित्व करते

हैं, और $Y_s$ छात्रों की पूर्वगामी कमाई या अप्रत्यक्ष लागत को दर्शाता है।

**जाँच-परिणाम**

देश आय समूह और स्कूली शिक्षा के स्तर पर शिक्षा के लिए प्रतिफल तालिका 2 और आकृति-1 में प्रस्तुत की गई है। जैसा कि अपेक्षित है, कम आय वाले देशों में प्रतिफल अधिक है, जहां स्कूली शिक्षा की मात्रा दुर्लभ है। ऊपरी मध्यम आय वाले देशों में प्राथमिक शिक्षा के लिए कम प्रतिफल इस तथ्य से समझाया जा सकता है कि प्राथमिक शिक्षा अधिकांश आबादी तक पहुंच गई है और नियंत्रण समूह के रूप में सेवा करने के लिए पर्याप्त संख्या में लोग अशिक्षित नहीं हैं। इसका मतलब यह भी हो सकता है कि इन देशों में प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिक विस्तार समीप होने के कारण, इस स्तर की स्कूली शिक्षा को आगे बढ़ाने के लिए ज्यादा गुंजाईश नहीं है। इसके बजाय, प्राथमिक स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता में निवेश बढ़ाना समझदारी हो सकती है।

**तालिका-2**

**देश आय समूह द्वारा शिक्षा पर प्रतिफल**

| आय का स्तर | शिक्षा का स्तर | वापसी की दर (प्रतिशत) | |
|---|---|---|---|
| | | निजी | सामाजिक |
| कम आय | प्राथमिक | 17.1 | 12.2 |
| | माध्यमिक | 14.1 | 7.5 |
| | तृतीयक | 22.8 | 9.6 |
| निम्नतर, मध्यम | प्राथमिक | 13.8 | 8.4 |
| | माध्यमिक | 9.4 | 6.7 |
| | तृतीयक | 17.6 | 7.0 |
| ऊपरी मध्य | प्राथमिक | 2.3 | 0.4 |
| | माध्यमिक | 4.5 | 2.9 |
| | तृतीयक | 16.9 | 9.2 |

कम आय वाले देशों में, स्कूली शिक्षा के लिए निजी प्रतिफल सभी स्तरों पर उच्च होता है। सामाजिक प्रतिफल को देखते हुए, स्कूली शिक्षा के विस्तार की प्राथमिकता प्राथमिक

**आकृति-1**

**शिक्षा में निवेश पर प्रतिफल, कम आय वाले देश (प्रतिशत)**

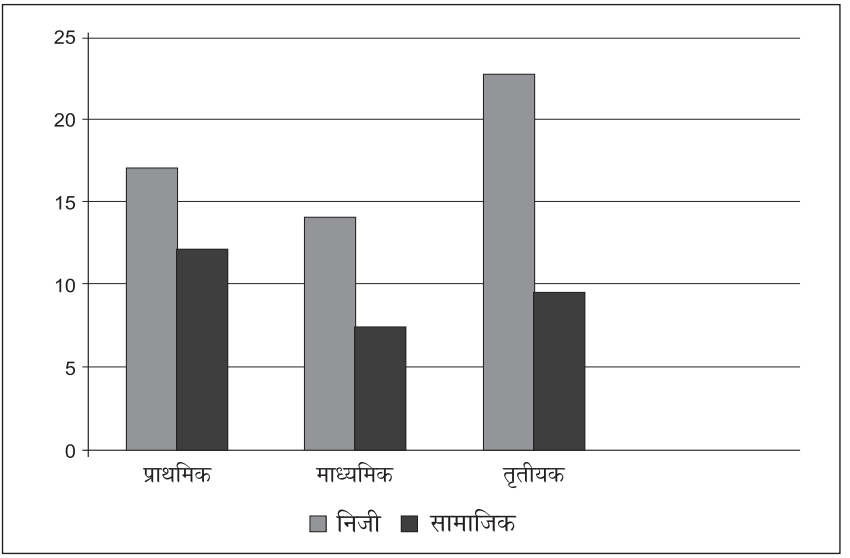


स्तर पर है। सबसे कम आय वाले देशों में, प्राथमिक नामांकन दर सार्वभौमिक दर से काफी कम है। कम आय वाले देशों में प्राथमिक विद्यालय के लिए शुद्ध नामांकन अनुपात 82 प्रतिशत से अधिक है (तालिका-3)।

निम्न मध्यम आय वाले देशों के लिए, प्रत्येक स्तर पर निजी प्रतिफल अधिक होता है, लेकिन माध्यमिक स्तर पर केवल 8 प्रतिशत ही है। निम्न मध्यम आय वाले देशों के लिए शुद्ध प्राथमिक नामांकन 87 प्रतिशत है, इसलिए आगे विस्तार के लिए एक औचित्य है। ऊपरी मध्यम आय वाले देशों के लिए, निजी प्रतिफल तृतीयक स्तर पर केवल उच्च है। नामांकन प्राथमिक स्तर पर सार्वभौमिक के करीब है, हालांकि 2005 से यह 94 प्रतिशत पर ही स्थिर हो गया है। माध्यमिक प्रतिफल कम है, लेकिन माध्यमिक स्तर पर नामांकन अनुपात तेजी से बढ़ रहा है, 2005 में केवल 64 प्रतिशत से बढ़कर आज 80 प्रतिशत से अधिक हो गया है। ऊपरी मध्यम आय वाले देशों में तृतीयक शिक्षा के लिए उच्च निजी और अपेक्षाकृत उच्च सामाजिक प्रतिफल को देखते हुए, गरीबों के लिए पहुंच में सुधार के लिए माध्यमिक स्तर पर एक अतिरिक्त प्रयास करना समझ में आता है, ताकि वे तृतीयक शिक्षा में उच्च निजी प्रतिफल का लाभ उठा सकें ।

**तालिका-3**

**आय समूह द्वारा आय एवं लागत अनुपात**

| देश की आय स्तर | शिक्षा स्तर | 2005 | 2006 | 2007 | 2008 | 2009 | 2010 | 2011 | 2012 | 2013 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| कम आय | प्राथमिक | 74.7 | 76.8 | 78.7 | 80.3 | 81.0 | 81.1 | 82.0 | 82.6 | 82.8 |
| | माध्यमिक | 29.6 | 30.9 | 31.8 | 33.0 | 34.3 | 35.5 | 36.2 | 37.1 | 37.1 |
| | तृतीयक | 5.3 | 5.7 | 6.2 | 6.8 | 7.6 | 8.4 | 9.0 | 9.1 | 9.1 |
| निम्नतर, मध्यम आय | प्राथमिक | 83.7 | 84.7 | 86.6 | 86.3 | 86.9 | 87.3 | 87.0 | 86.9 | 86.6 |
| | माध्यमिक | 48.3 | 49.4 | 51.4 | 53.0 | 53.0 | 55.3 | 57.8 | 59.6 | 59.7 |
| | तृतीयक | 14.0 | 14.6 | 15.7 | 17.1 | 17.9 | 19.1 | 21.8 | 23.0 | 23.2 |
| ऊपरी मध्य आय | प्राथमिक | 94.7 | 94.1 | 94.6 | 94.5 | 94.5 | 94.4 | 94.4 | 94.2 | 94.3 |
| | माध्यमिक | 64.2 | 66.1 | 68.6 | 71.0 | 73.3 | 75.4 | 77.4 | 78.5 | 80.5 |
| | तृतीयक | 23.7 | 25.2 | 26.1 | 27.2 | 28.7 | 30.4 | 31.9 | 34.2 | 36.6 |

*स्रोत:* विश्व बैंक एडस्टैट्स, http://datatopics.worldbank.org/education/

*नोट:* प्राथमिक और माध्यमिक के लिए शुद्ध नामांकन अनुपात; तृतीयक के लिए सकल नामांकन दर

## नीति क्रियान्वयन

शिक्षा के प्रतिफल की पद्धति में कई नीतिगत प्रभाव हैं। शिक्षा के लिए सामाजिक प्रतिफल पर ध्यान केंद्रित करते हुए, निम्न आय वाले देशों में प्राथमिक शिक्षा निवेश प्राथमिकता है, इसके बाद माध्यमिक और तृतीयक है। यह खोज साहित्य में पिछले निष्कर्षों के अनुरूप है (सकरापाउलस और पैट्रिनोस 2004; मॉन्टेनेग्रो और पैट्रिनोस 2014)। कम आय वाले देशों में 12 से 17 प्रतिशत तक शिक्षा के लिए सामाजिक प्रतिफल की सीमा किसी भी वैकल्पिक निवेश (तालिका-4 और आकृति-2) से काफी अच्छी है।

**तालिका-4**

**वैकल्पिक निवेश के लिए दीर्घकालिक प्रतिफल**

| निवेश का प्रकार | वापसी (प्रतिशत) |
|---|---|
| शिक्षा | 12–17 |
| दीर्घकालिक बांड | 2.7 |
| बैंक जमा | 4.6 |
| स्टॉक्स | 4.6 |
| आवास | 2.8 |

*स्रोत:* शिक्षा (तालिका 3), प्राथमिक, निम्न आय वाले देश, वैकल्पिक निवेश; http://money.cnn.com/calculator/pf/home-rate-of-return/ (http://data.worldbank.org/indicator/FR-INR-DPST) stern.nyu.edu/

**चित्र-2: वैकल्पिक निवेश पर प्रतिफल (प्रतिशत)**

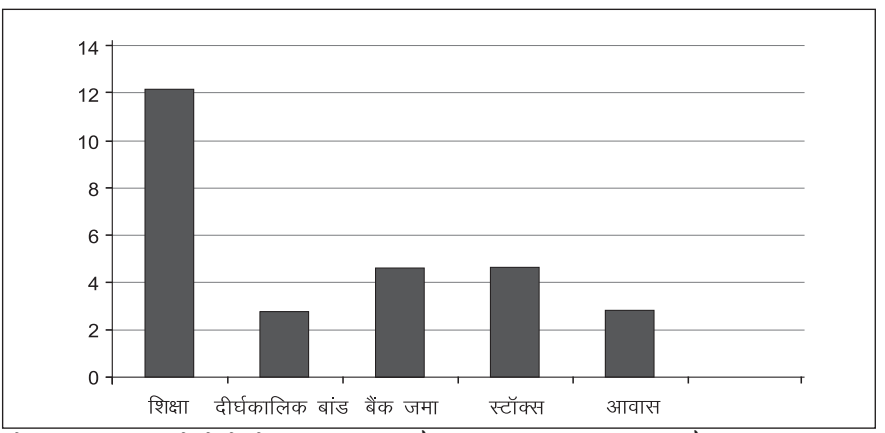


*नोट:* कम आय वाले देशों में शिक्षा, निजी और सामाजिक प्रतिफल का औसत

विशेष रूप से तृतीयक शिक्षा के लिए वापसी की निजी और सामाजिक दरों के बीच अंतर, अभिनव वित्त पोषण तंत्र की मांग करता है जो नामांकन के लिए विशेष रूप से गरीबों (सकरापाउलस, जिमेनेज और टैन 1985) के बीच पहुंच और प्रभावी मांग का विस्तार करेगा। इस तरह के तंत्र में शामिल हो सकते हैं, लेकिन जो इस तक सीमित नहीं हैं: चुनिंदा लागत-वसूली, आय आकस्मिक ऋण, मानव पूंजी अनुबंध, सामाजिक प्रभाव बांड और सशर्त नकद हस्तांतरण।

द्वितीयक स्तर पर पहुंच और गुणवत्ता का विस्तार करने के लिए, दूरस्थ और ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबों तक पहुंचने के लिए वैकल्पिक मॉडल की आवश्यकता हो सकती है। कुछ देशों में जातीय अल्पसंख्यकों और स्वदेशी लोगों के बीच नामांकन बढ़ाने के लिए विशेष उपायों की आवश्यकता हो सकती है, जैसे द्विभाषी शिक्षा या परंपरागत वितरण मोड। चयनित छात्रवृत्तियां एक भूमिका निभाएंगी, खासतौर पर लड़कियों को ऊपरी माध्यमिक स्तर पर गैर परंपरागत क्षेत्रों में प्रवेश में लुभाने के लिए। विशेष रूप से ऊपरी स्तर पर माध्यमिक शिक्षा के लिए बहुत अधिक लागत, सार्वजनिक-निजी साझेदारी के उपयोग की आवश्यकता हो सकती है - उदाहरण के लिए, माध्यमिक को प्राप्त करने के लिए छात्रवृति और गरीबों और वंचित तक पहुंचने के लिए कौशल निर्माण और चार्टर स्कूलों के लिए उद्योग लिंक ।

**अनुलग्नक-1**

**औसत आयु-कमाई वृत्त (यूएस $ में)**

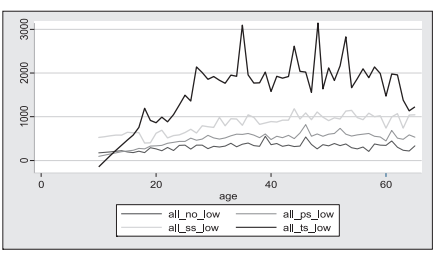


**कम आय वाले देश**

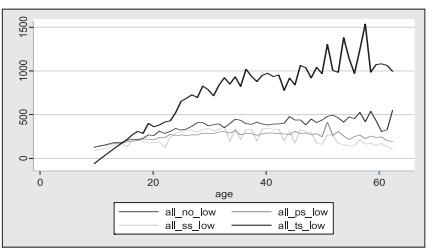


**उच्च मध्य आय वाले देश**

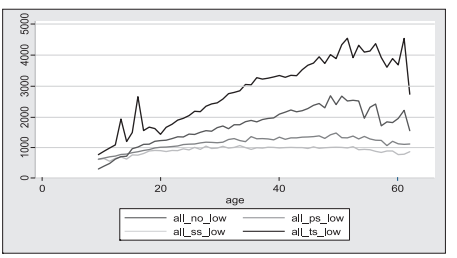


**कम मध्य आय वाले देश**

**अनुलग्नक-2**

## शिक्षा के स्तर से सरल आयु-कमाई वृत्त

### कम आय वाले देश ($ अमेरिका)

| आयु | कोई स्कूल नहीं | प्राथमिक | माध्यमिक | तृतीयक |
|---|---|---|---|---|
| 10 | | | | |
| 11 | | | | |
| 12 | 179 | | | |
| 13 | 191 | | | |
| 14 | 202 | 207 | | |
| 15 | 213 | 231 | | |
| 16 | 224 | 254 | | |
| 17 | 234 | 276 | | |
| 18 | 244 | 298 | | |
| 19 | 253 | 319 | | |
| 20 | 262 | 340 | 646 | |
| 21 | 271 | 359 | 664 | |
| 22 | 279 | 378 | 682 | |
| 23 | 287 | 396 | 699 | |
| 24 | 295 | 414 | 716 | 1361 |
| 25 | 302 | 431 | 732 | 1439 |
| 26 | 309 | 447 | 748 | 1512 |
| 27 | 315 | 462 | 764 | 1582 |
| 28 | 321 | 476 | 779 | 1648 |
| 29 | 327 | 490 | 793 | 1710 |
| 30 | 332 | 503 | 807 | 1769 |
| 31 | 337 | 516 | 820 | 1823 |
| 32 | 342 | 528 | 833 | 1874 |
| 33 | 346 | 538 | 846 | 1921 |
| 34 | 350 | 549 | 858 | 1964 |
| 35 | 353 | 558 | 869 | 2003 |
| 36 | 356 | 567 | 881 | 2038 |
| 37 | 359 | 575 | 891 | 2070 |
| 38 | 361 | 582 | 901 | 2097 |
| 39 | 363 | 589 | 911 | 2121 |

*क्रमशः*

| आयु | कोई स्कूल नहीं | प्राथमिक | माध्यमिक | तृतीयक |
|---|---|---|---|---|
| 40 | 364 | 595 | 920 | 2141 |
| 41 | 365 | 600 | 928 | 2157 |
| 42 | 366 | 604 | 937 | 2170 |
| 43 | 366 | 608 | 944 | 2178 |
| 44 | 366 | 611 | 951 | 2183 |
| 45 | 366 | 613 | 958 | 2184 |
| 46 | 365 | 615 | 964 | 2181 |
| 47 | 364 | 616 | 970 | 2174 |
| 48 | 362 | 616 | 975 | 2163 |
| 49 | 360 | 615 | 980 | 2149 |
| 50 | 358 | 614 | 984 | 2130 |
| 51 | 355 | 612 | 988 | 2108 |
| 52 | 352 | 609 | 991 | 2082 |
| 53 | 349 | 605 | 994 | 2052 |
| 54 | 345 | 601 | 996 | 2019 |
| 55 | 341 | 596 | 998 | 1981 |
| 56 | 336 | 590 | 999 | 1940 |
| 57 | 331 | 584 | 1000 | 1895 |
| 58 | 326 | 577 | 1000 | 1846 |
| 59 | 320 | 569 | 1000 | 1793 |
| 60 | 314 | 560 | 1000 | 1737 |
| 61 | 307 | 551 | 998 | 1676 |
| 62 | 300 | 541 | 997 | 1612 |
| 63 | 293 | 530 | 995 | 1544 |
| 64 | 285 | 519 | 992 | 1472 |
| 65 | 277 | 507 | 989 | 1396 |

**कम मध्य आय वाले देश ($ अमेरिका)**

| आयु | कोई स्कूल नहीं | प्राथमिक | माध्यमिक | तृतीयक |
|---|---|---|---|---|
| 10 | | | | |
| 11 | | | | |
| 12 | 479 | | | |
| 13 | 506 | | | |

*क्रमशः*

| आयु | कोई स्कूल नहीं | प्राथमिक | माध्यमिक | तृतीयक |
|---|---|---|---|---|
| 14 | 533 | 599 | | |
| 15 | 559 | 638 | | |
| 16 | 583 | 675 | | |
| 17 | 607 | 711 | | |
| 18 | 630 | 746 | | |
| 19 | 652 | 780 | | |
| 20 | 673 | 812 | 978 | |
| 21 | 693 | 843 | 1054 | |
| 22 | 712 | 873 | 1127 | |
| 23 | 730 | 902 | 1198 | |
| 24 | 747 | 930 | 1266 | 2088 |
| 25 | 763 | 956 | 1332 | 2180 |
| 26 | 778 | 981 | 1395 | 2269 |
| 27 | 792 | 1005 | 1456 | 2356 |
| 28 | 806 | 1028 | 1515 | 2441 |
| 29 | 818 | 1049 | 1571 | 2525 |
| 30 | 830 | 1069 | 1625 | 2606 |
| 31 | 840 | 1088 | 1676 | 2686 |
| 32 | 850 | 1106 | 1725 | 2764 |
| 33 | 858 | 1123 | 1772 | 2840 |
| 34 | 866 | 1138 | 1816 | 2914 |
| 35 | 872 | 1152 | 1858 | 2986 |
| 36 | 878 | 1165 | 1897 | 3056 |
| 37 | 883 | 1177 | 1934 | 3124 |
| 38 | 887 | 1187 | 1969 | 3190 |
| 39 | 890 | 1197 | 2001 | 3255 |
| 40 | 891 | 1205 | 2030 | 3317 |
| 41 | 892 | 1211 | 2058 | 3378 |
| 42 | 892 | 1217 | 2083 | 3437 |
| 43 | 892 | 1221 | 2105 | 3494 |
| 44 | 890 | 1224 | 2125 | 3548 |
| 45 | 887 | 1226 | 2143 | 3602 |
| 46 | 883 | 1227 | 2158 | 3653 |
| 47 | 878 | 1227 | 2171 | 3702 |

*क्रमशः*

| आयु | कोई स्कूल नहीं | प्राथमिक | माध्यमिक | तृतीयक |
|---|---|---|---|---|
| 48 | 873 | 1225 | 2181 | 3749 |
| 49 | 866 | 1222 | 2189 | 3795 |
| 50 | 858 | 1218 | 2195 | 3838 |
| 51 | 850 | 1212 | 2198 | 3880 |
| 52 | 840 | 1206 | 2199 | 3919 |
| 53 | 830 | 1198 | 2198 | 3957 |
| 54 | 819 | 1189 | 2194 | 3993 |
| 55 | 806 | 1178 | 2187 | 4027 |
| 56 | 793 | 1167 | 2178 | 4059 |
| 57 | 779 | 1154 | 2167 | 4090 |
| 58 | 764 | 1140 | 2153 | 4118 |
| 59 | 748 | 1125 | 2137 | 4144 |
| 60 | 730 | 1109 | 2119 | 4169 |
| 61 | 712 | 1091 | 2098 | 4191 |
| 62 | 693 | 1072 | 2075 | 4212 |
| 63 | 674 | 1052 | 2049 | 4231 |
| 64 | 653 | 1031 | 2021 | 4248 |
| 65 | 631 | 1008 | 1991 | 4263 |

**ऊपरी मध्य आय वाले देश ($ अमेरिका)**

| आयु | कोई स्कूल नहीं | प्राथमिक | माध्यमिक | तृतीयक |
|---|---|---|---|---|
| 10 | | | | |
| 11 | | | | |
| 12 | 1979 | | | |
| 13 | 2107 | | | |
| 14 | 2230 | 2485 | | |
| 15 | 2349 | 2566 | | |
| 16 | 2462 | 2644 | | |
| 17 | 2570 | 2719 | | |
| 18 | 2672 | 2791 | | |
| 19 | 2770 | 2860 | | |
| 20 | 2863 | 2925 | 3297 | |
| 21 | 2951 | 2989 | 3399 | |
| 22 | 3033 | 3049 | 3498 | |

*क्रमशः*

| आयु | कोई स्कूल नहीं | प्राथमिक | माध्यमिक | तृतीयक |
|---|---|---|---|---|
| 23 | 3111 | 3106 | 3594 | |
| 24 | 3183 | 3160 | 3687 | 5614 |
| 25 | 3250 | 3211 | 3776 | 5916 |
| 26 | 3313 | 3259 | 3863 | 6210 |
| 27 | 3370 | 3305 | 3946 | 6495 |
| 28 | 3422 | 3347 | 4026 | 6771 |
| 29 | 3469 | 3386 | 4103 | 7038 |
| 30 | 3510 | 3423 | 4177 | 7297 |
| 31 | 3547 | 3456 | 4248 | 7547 |
| 32 | 3579 | 3487 | 4316 | 7788 |
| 33 | 3605 | 3514 | 4381 | 8020 |
| 34 | 3627 | 3539 | 4442 | 8244 |
| 35 | 3643 | 3561 | 4501 | 8459 |
| 36 | 3655 | 3579 | 4556 | 8665 |
| 37 | 3661 | 3595 | 4608 | 8863 |
| 38 | 3662 | 3608 | 4657 | 9052 |
| 39 | 3658 | 3618 | 4703 | 9232 |
| 40 | 3649 | 3625 | 4746 | 9403 |
| 41 | 3635 | 3629 | 4785 | 9566 |
| 42 | 3616 | 3630 | 4822 | 9720 |
| 43 | 3591 | 3628 | 4855 | 9865 |
| 44 | 3562 | 3623 | 4886 | 10002 |
| 45 | 3528 | 3615 | 4913 | 10129 |
| 46 | 3488 | 3604 | 4937 | 10248 |
| 47 | 3443 | 3590 | 4958 | 10,359 |
| 48 | 3394 | 3574 | 4976 | 10460 |
| 49 | 3339 | 3554 | 4991 | 10553 |
| 50 | 3279 | 3531 | 5002 | 10,637 |
| 51 | 3214 | 3506 | 5011 | 10713 |
| 52 | 3144 | 3477 | 5016 | 10,779 |
| 53 | 3069 | 3446 | 5019 | 10,837 |
| 54 | 2988 | 3411 | 5018 | 10,886 |
| 55 | 2903 | 3374 | 5014 | 10927 |
| 56 | 2813 | 3334 | 5007 | 10959 |

*क्रमशः*

| आयु | कोई स्कूल नहीं | प्राथमिक | माध्यमिक | तृतीयक |
|---|---|---|---|---|
| 57 | 2717 | 3290 | 4996 | 10982 |
| 58 | 2617 | 3244 | 4983 | 10996 |
| 59 | 2511 | 3195 | 4967 | 11001 |
| 60 | 2400 | 3143 | 4947 | 10998 |
| 61 | 2284 | 3088 | 4925 | 10,986 |
| 62 | 2163 | 3030 | 4899 | 10,966 |
| 63 | 2037 | 2969 | 4870 | 10,936 |
| 64 | 1906 | 2905 | 4838 | 10,898 |
| 65 | 1770 | 2838 | 4803 | 10852 |

## *संदर्भ*


एजुकेशन कमीशन (2016) : द लर्निंग जनरेशन: इन्वेस्टिंग इन एजुकेशन फॉर अ चेंजिंग वर्ल्ड द इंटरनेशनल कमीशन ऑन फाइनेंसिंग ग्लोबल एजुकेशन ओपोरचुनिटी (educationcommission.org)

मोंटेनेग्रो, सी.ई. और एच.ए. पैट्रिनॉस (2014) : कमपेराबल एस्टिमेट्स आफ रिटर्न्स टू स्कूलिंग अराउंड द वर्ल्ड, वर्ल्ड बैंक पॉलिसी रिसर्च वर्किंग पेपर सीरीज नं 7020।

पैट्रिनॉस, एच.ए. (2016) : 'एस्टिमेट्स आफ रिटर्न्स टू स्कूलिंग उसिंग द मईनसर एकुअसन', आईजेडए वर्ल्ड आफ लेबर।

पीट, ई.डी., जी. फिंक और डब्ल्यू. फॉजी (2015) : 'रिटर्न्स टू एजुकेशन इन डवलपिंग कन्ट्रीज: एविडेंस फ्रॉम द लिविंग स्टैंडर्ड्स एंड मेज़रमेंट स्टडी सर्वे', इकॉनमी आफ एजुकेशन रिव्यु 49, पीपी 69-90।

सकरापाउलस, जी. और एच.ए. पैट्रिनॉस (2004) : 'रिटर्न्स टू इन्वेस्टमेंट इन एजुकेशन: अ फर्दर अपडेट', एजुकेशन इकानमिक्स 12(2), पीपी. 111-135.

सकरापाउलस, जी. और एच. पैट्रिनोस, (2004) : 'रिटर्न्स टू इन्वेस्टमेंट इन एजुकेशन: अ फर्दर अपडेट'। एजुकेशन इकॉनमिक्स 12(2), पीपी. 111-134।

सकरापाउलस, जी. और आर. मैटसन (1998): 'एसटीमीटिंग द रिटर्न्स टू एजुकेशन: ए सेंसिटीविटी एनालिसिस ऑफ मेथ्ड्स एंड सैंपल साइज', जर्नल आफ एजुकेशन डेवलपमेंट एंड एडमिनिस्ट्रेशन 12(3), पीपी. 271-287।

सकरापाउलस, जी., (1995): 'द प्रोफिटेबिलिटी आफ इंवेस्टमेंट इन एजुकेशन: कंसेप्ट एंड मेथ्ड्स' द वर्ल्ड बैंक, ह्यूमन कैपिटल डेवलपमेंट एंड ऑपरेशन पालिसी, वर्किंग पेपर 63।

सकरापाउलस, जी., जे.पी. टैन और ई. जिमेंनेज (1986): द फाइनेंसिंग आफ एजुकेशन इन डेवलपिंग कन्ट्रीज: एक्सप्लोरेशन आफ पालिसी ऑप्शन। वाशिंगटन डी.सी। विश्व बैंक।

वर्ल्ड बैंक (2016): 'कंट्री एंड लेंडिंग ग्रुप्स' https://datahelpdesk.worldbank.org/knowledgebase/articles/906519

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 24, अंक 3, दिसंबर 2017

# राष्ट्रीय पाठ्यचर्याओं में परीक्षा विमर्श

**ऋतु बाला***

***सार-संक्षेप***

*विद्यालयी परीक्षा की कुछ केंद्रीय विशेषतायें हैं। इनमें से एक है-आजादी के सात दशक गुजर जाने के बावजूद विद्यालयी परीक्षा में औपनिवेशिक विरासत की निरंतरता का बने रहना। दूसरी है, थोड़े बहुत तकनीकी एवं प्रबंधनगत बदलावों के बावजूद उसके मूलभूत चरित्र का बरकरार रहना। यह सब उस स्थिति में है जबकि परीक्षा की आलोचनाओं का इतिहास भी लगभग उतना ही पुराना है जितना कि परीक्षा का इतिहास। अब सवाल यह है कि परीक्षा अपनी आलोचनाओं से असंवादी कैसे रही। परीक्षा की आलोचनाओं का विमर्श न बन पाना इसकी एक वजह हो सकती है। अत: उपरोक्त संदर्भ में प्रस्तुत शोध का मुख्य सरोकार परीक्षा संबंधी आलोचनाओं की पहचान करना है। दूसरे शब्दों में प्रस्तुत शोध पत्र का केंद्रीय सरोकार नीति निर्माताओं, पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक, शिक्षणशास्त्र, मूल्यांकन एवं शोध से ताल्लुक रखनेवालों के सम्मुख विद्यालयी परीक्षा संबंधी ऐतिहासिकृत विवरणात्मक संदर्भ उपलब्ध करवाना है। इस काम के लिए शोध पत्र विद्यालयी परीक्षा को अपना संदर्भ बनाता है और राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) द्वारा तैयार की गई पिछले चार दशकों की पाठ्यचर्या को शोध की सामग्री बनाता है।*

आज़ादी के बाद विद्यालय शिक्षा में परीक्षा नामक परिघटना अपनी केंद्रीय उपस्थिति बदस्तूर कायम रखने में सफल रही है। शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक एवं शिक्षणशास्त्र यानी शिक्षा के लगभग सभी पक्ष पर परीक्षा का प्रभाव गहरा रहा है। विद्यालयी शिक्षा में परीक्षा की मजबूती का आकलन इस बात से किया जा सकता है कि इसका स्वरूप आज भी कमोबेश वही है, जो औपनिवेशिक काल में था।

*सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सन 2010 में केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सीबीएसई) ने जरूर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की अवधारणा के जरिए इसमें कुछ बदलाव लाने की पहलकदमी की थी। पर विद्यालयी परीक्षा में यह पहलकदमी एक दशक का सफरनामा भी तय न कर सकी और सन 2017 में यह पहलकदमी भी समेट ली गयी। विद्यालयी परीक्षा में सतत एवं व्यापक मूल्यांकन जब लाया गया तब और जब इसे समेटा गया इन दोनों ही वक्त पर परीक्षा पर हुई दस्तावेज़ी स्तर पर की गई समीक्षा को सन्दर्भ बनाने का लगभग अभाव देखा जा सकता है। सीबीएसई का यह अल्पकालिक प्रावधान अपनी शुरुआत से ही सकारात्मक एवं नकारात्मक टिप्पणियों से घिरा रहा। पर शैक्षिक दस्तावेज़ के स्तर पर विमर्श के अभाव में सतत एवं व्यापक मूल्यांकन पर व्यक्त की जाने वाली सहमति एवं असहमति, दोनों ही अ-ऐतिहासिकृत रही। विद्यालयी परीक्षा के संदर्भ में की जाने वाली पहलकदमी और इसे समेटे जाने के उपक्रम का अ-ऐतिहासिकृत होना उपरोक्त दोनों ही उपक्रमों की विधिमूलकता पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। इस तरह की पहलकदमियों की विधि को वैध बनाने का एक तरीका तो यह हो सकता है कि परीक्षा संबंधी शैक्षिक दस्तावेज़ को संदर्भ बनाया जाए ताकि इससे संबंधी सुधार - संशोधन अथवा यथास्थिति अ-ऐतिहासिकृत न होकर ऐतिहासिकृत हो सके। प्रस्तुत शोध इसी सरोकार के मद्देनज़र राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) द्वारा तैयार की गई पिछले चार दशकों की पाठ्यचर्याओं में निहित परीक्षा की समीक्षा को समझने का प्रयास करता है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) द्वारा तैयार की गईं 1975, 1985, 1988, 2000, 2005 की पाँचों पाठ्यचर्याओं में परीक्षा पर विस्तार से विवेचनात्मक एवं विकल्पात्मक विमर्श देखने को मिलता है। 2005 की पाठ्यचर्या में- जिसे आगे संक्षेप में एनसीएफ 2005 से सम्बोधित किया जाएगा- परीक्षा के हर पक्ष का ऐतिहासिक विवेचनापूर्वक एवं उसके भविष्यगत विकल्पों पर विचार देखने को मिलता है। प्रश्न-पत्र की शिक्षाशास्त्रीय विवेचना, फेल होने वाले विद्यार्थियों की सामाजिक-भौगोलिक पहचान एवं परीक्षा परिणाम को उनके लिहाज से न्यायपूर्ण बनाने का सुझाव वह आयाम है, जिसे इस पाठ्यचर्या की नवीनता एवं नई सृजनात्मक दृष्टि मानी जा सकती है। परीक्षा के संदर्भ में पाँचों पाठ्यचर्या जिस पक्ष पर एकमत हैं, वे हैं- बाह्य परीक्षा के वर्चस्व को कम करना, पास एवं फेल की श्रेणी को ख़त्म करना, अंक की जगह ग्रेड प्रणाली को लागू करना एवं सेमेस्टर सिस्टम को लाना, सतत एवं व्यापक

मूल्यांकन को स्थापित करना, परीक्षा परिणाम के अत्यधिक बढ़े हुए महत्व को कम करना तथा मूल्यांकन को सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का अभिन्न हिस्सा बनाना।

मूल्यांकन के ज्ञानमीमांसीय पक्ष में मौजूद रटने के तत्व के प्रति आगाह करते हुए पाठ्यचर्या (1975) का कहना है कि मूल्यांकन का तरीका ऐसा होना चाहिए जिससे विद्यार्थी अपने ज्ञान के उपयोगपूर्वक नई स्थितियों से जूझने एवं समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने की ओर बढ़ सके। मूल्यांकन में वह संभावना होनी चाहिए जिससे कि वह विद्यार्थियों में आलोचनात्मक चिंतन, सृजनात्मकता एवं मूल्यात्मक निर्णय जैसे 'ज्ञान की उच्च सीमाओं', तक पहुँचाने में प्रेरक हो सके। पाठ्यचर्या उस मूल्यांकन को अर्थहीन मानती है जो उपरोक्त दिशा में विद्यार्थी को आगे न बढ़ाए। पाठ्यचर्या के अनुसार ''जहाँ स्कूल में केवल शुष्क शैक्षिक अनुभव दिए जाते हैं या मूल्यांकन की विधि रटने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करती है, वहाँ यह सब निरर्थक हो जाता है, जिस पर हमने अभी तक विचार विमर्श किया।'' (पृ.47)

प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा - 1985 का मानना है कि मूल्यांकन नियोजित शिक्षा का आंतरिक अंग है। यह विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के प्रयत्नों, अनुभवों की पर्याप्तता-अपर्याप्तता एवं उसकी सटीकता का अता-पता देती हुई यह मानती है कि 10वीं की बाह्य परीक्षा को कुछ ज्यादा ही महत्व दिया जाता है। वह मानती है कि इस परीक्षा की सीमाएँ एवं अपर्याप्तता भी हैं जिसे दूर किया जाना चाहिए। वह पाती है कि संस्थाएँ विद्यार्थियों को लेकर एक समान नहीं होतीं बल्कि उसमें व्यापक असमानता पाई जाती है, पर बाह्य परीक्षा इस असमानता का ख़्याल नहीं रख पाती। 'पेपर-पेंसिल टेस्ट' दिए हुए समय में विद्यार्थियों के निष्पादन की जाँच करने में न तो समर्थ होता है और न ही यह इतना वृहत होता है कि वह शिक्षा के उद्देश्यों की जाँच में न्यायपूर्ण हो सके। क्योंकि वह ज्ञान तथा समझ के परे जाता है। इस प्रकार बाह्य परीक्षा पाठ्यचर्या के हस्तांतरण को विरूप कर देती है।

उसकी चिन्ता है कि परीक्षा, सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को मूल्यांकित करने की जगह विद्यार्थी के श्रेणीकरण का काम करती है। वह उनकी प्रगति को भी मार्गदर्शन देने का काम नहीं करती। वह विश्लेषित करती है कि परीक्षा चूँकि उच्चशिक्षा और नौकरी में चुनाव करने की सुविधा प्रदान करती है इसलिए परीक्षा में प्राप्त अंकों को ग़ैर जरूरी तौर पर वह महत्व मिला हुआ है, जिसके कि वह हक़दार नहीं है। यह अभ्यास विद्यार्थी, शिक्षक तथा अभिभावकों को सार्थक शिक्षा से दूर ले जाता है। वह यह स्थापित करता है

कि पाठ्यचर्या को विद्यार्थी के सम्पूर्ण विकास पर जोर देना चाहिए और मूल्यांकन की प्रक्रिया में यह बात झलकनी चाहिए। दस्तावेज यह बताता है कि आजकल जिस तरह का मूल्यांकन किया जाता है, वह अपने उद्देश्य, संभावना तथा प्रयोजनीयता के लिहाज से सिमटा हुआ है।

दस्तावेज इसका सीमांकन करते हुए कहता है कि पाठ्यचर्या उन अनुभवों को सहेजने तथा व्यवस्थित करने के संबंध में मार्गदर्शन करती है जो उन्हें सामाजिक, भावनात्मक तथा संज्ञानात्मक विकास की ओर बढ़ाए। जबकि परीक्षा कुछ तथ्यों की जानकारी तथा सतही तौर पर वांछित अभिवृत्तियों तथा मूल्यों को मूल्यांकित करने का काम करती है। इसकी मान्यता है कि जब तक पाठ्यचर्या का काम संज्ञानात्मक पक्ष तक सीमित रहेगा, तब तक मूल्यांकन इससे परे नहीं जा सकता। यह रेखांकित करती है कि अभी जिस तरह का मूल्यांकन प्रचलन में है वह विद्यार्थी की क्षमताओं का नहीं बल्कि सूचना अथवा ज्ञान के अधिग्रहण को मूल्यांकित करने का काम करती है।

दस्तावेज – क्षमताओं, ग़ैर–संज्ञानात्मक क्षेत्र के विकास को मूल्यांकन के क्षेत्र में लाने की सिफारिश करता है। उसे वह पृष्ठपोषण देने वाले विद्यार्थी के विकास का विश्लेषण एवं उसका निदान–प्रदान करने वाले तंत्र के रूप में देखना चाहता है। दस्तावेज यह सिफारिश करता है कि जब विद्यार्थी अन्त:क्रिया कर रहे हों – वह यथार्थ हो या कृत्रिम परिस्थिति वाला–उस समय का अवलोकन, मौखिक संवाद, पहलकदमियों का रिकॉर्ड, रुचि इत्यादि का प्रयोग करते हुए मूल्यांकन को व्यापक होना चाहिए। इसके साथ ही विद्यार्थी के विकास को दर्शाती हुई संचयी रिपोर्ट भी होनी चाहिए। इसमें भावनात्मक तथा *साइको–मोटर* परिक्षेत्र का पृष्ठपोषण भी होना चाहिए।

दस्तावेज यह मानता है कि परीक्षा तभी तक प्रासंगिक है जब तक वह अधिगमकर्ता को मिलने वाले अवसरों तथा सुविधाओं को संदर्भित करती है। जबकि सच्चाई यह है कि संस्था के लिहाज से इतने बड़े परीक्षार्थी वर्ग के लिए उपरोक्त आधार पर परीक्षा का प्रारूप (डिजाइन) नहीं बनाया जा सकता और न ही विभिन्न परीक्षकों के अंकन में कोई समरूपता लाई जा सकती है।

इस तरह की परीक्षा अधिगमकर्ता की एक बड़ी संख्या को 'फेल' की चिप्पी चस्पा कर उनकी भर्त्सना करने का काम करती है। इस प्रकार एक पूरे तंत्र के असफल होने की परिघटना व्यक्तियों एव संस्थाओं के लिए कलंक बन जाती है। शिक्षकों तथा

प्रशासकों के लिए इस तरह के अवैयक्तिक/निर्वैयक्तिक पृष्ठपोषण का उपयोग कम है और स्वयं अधिगमकर्ता के लिए भी। इस पृष्ठपोषण का मतलब इसलिए नहीं रह जाता क्योंकि तब तक बहुत विलम्ब हो चुका होता है। प्रश्नपत्र को व्यापक बनाना, परीक्षा बोर्ड का विकेन्द्रीकरण, केन्द्रीकृत मूल्यांकन और विस्तारपूर्ण परीक्षक निर्देश को लागू करना। खुली पुस्तक परीक्षा तथा मूल्यांकन में किताब एवं अन्य स्रोतों का उपयोग परीक्षा में सुधार ला सकता है। दस्तावेज सुझाता है कि एक छोटी समयावधि में विद्यार्थी का मूल्यांकन, एक या दो विषयों में निम्न उपलब्धि को विद्यार्थी की सम्पूर्ण असफलता का द्योतक बताया जाना उचित नहीं है बल्कि इसकी जगह ज्ञान के विशेष क्षेत्र को सफलतापूर्वक समाप्त करने के लिए *क्रेडिट सिस्टम* लाना चाहिए और प्रमाणपत्र के लिए इसे संचयी बनाना चाहिए। उपलब्धि में सुधार का मौका होना चाहिए।

दस्तावेज, शैक्षिक जाँच सेवा को विकसित किए जाने की जरूरत बतलाता है और सुझाता है कि इसे शिक्षक एवं प्रशासकों को उपलब्ध कराना चाहिए ताकि राज्य के मानक के अनुसार संस्थाओं के निष्पादन की जाँच हो सके। दस्तावेज यह मानता है कि विद्यार्थियों की रुचि एवं अभिवृत्ति का रिकॉर्ड रखा जाना चाहिए।

सन् 1988 की पाठ्यचर्या यह मानती है कि पढ़ने-पढ़ाने के तौर-तरीके, पाठ्यचर्या इत्यादि में कई परिवर्तन किए गए, पर परीक्षा के क्षेत्र में कोई ख़ास प्रयास नहीं हुए। यही वजह है कि शिक्षा पर परीक्षा का वर्चस्व आज भी बना हुआ है। वह यह मानती है कि मूल्यांकन शिक्षा का आंतरिक अंग है जबकि परीक्षा बाह्य बोर्ड द्वारा ली जाती है। पाठ्यचर्या यह पाती है कि सतत एवं व्यापक आंतरिक मूल्यांकन की कीमत पर '*वन शॉट*' परीक्षा को महत्व दिया जा रहा है। परिणाम यह है कि सम्पूर्ण पाठ्यचर्या हस्तांतरण विपरीत तौर पर परीक्षा द्वारा निर्देशित हो रहा है। शिक्षक, अधिगमकर्ता की आवश्यकता एवं विद्यार्थी के विभिन्न क्षेत्र के विकास को सम्बोधित करने की जगह परीक्षा की मांगों को संतुष्ट करने में लगे हैं। पाठ्यचर्या का यह मानना है कि एक दिए गए सीमित समय में लिखित परीक्षा द्वारा विद्यार्थियों का आकलन किया जाना शिक्षा के उद्देश्य के साथ न्याय नहीं है। परीक्षा इस्कॉलिस्टिक (पांडित्य) के क्षेत्र तक सीमित है और ग़ैर पांडित्य के क्षेत्र को छोड़ देती है। पाठ्यचर्या का मानना है कि निर्धारित उद्देश्य के अनुसार विद्यार्थी की प्रगति को जाँचने, सीखने-सिखाने की प्रक्रिया की प्रभावशीलता को मापने तथा तदनुसार उसमें सुधार-संशोधन का काम परीक्षा नहीं कर रही है। जबकि मूल्यांकन का

आखिरी उद्देश्य है शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाना तथा सीखने-सिखाने को गुणवत्तापूर्ण बनाने में सहयोगी होना।

परीक्षा द्वारा दिए गए अंक का इस्तेमाल उच्च अध्ययन तथा रोजगार के क्षेत्र में किया जा रहा है। पाठ्यचर्या की इस स्थापना के संदर्भ में इकस्टीयन एवं नोह (1989) के आठ देशों की परीक्षा पद्धति के अध्ययन को संदर्भित किया जाना प्रासंगिक होगा। उन्होंने अपने अध्ययन में यह पाया है कि परीक्षा का सबसे महत्वपूर्ण काम है उच्चतर अध्ययन में विद्यार्थियों के प्रवाह को रोकना। इन्हीं वजहों से राधाकृष्णन आयोग 1948-49 एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ने डिग्री को नौकरी से अलग करने का सुझाव रखा था। पाठ्यचर्या 1988 न्यूनतम अधिगम स्तर की सिफारिश करती है, साथ ही साथ राष्ट्रीय टेस्टिंग सेवा की संस्तुति भी। ज्ञातव्य है कि ये दोनों ही विषय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 एवं उसकी कार्य योजना में देखने को मिलते हैं। पाठ्यचर्या का मानना है कि शारीरिक, संज्ञानात्मक तथा भाविक एवं *साइको-मोटर स्किल* को भी परीक्षा अपने दायरे में लाए।

अल्पावधि वाले प्रश्न-पत्र निर्माण प्रक्रिया के क्या नतीजे हो सकते हैं और उसका विकल्प क्या हो सकता है। इस पर सिंह (1974 एवं 1984) ने विचार किया है। उनका मानना है कि अल्पावधि वाले प्रश्नपत्र निर्माण की प्रक्रिया में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकृत शैक्षणिक प्रक्रिया नहीं अपनाई जा सकती इसलिए भी प्रश्नपत्र में कई तरह की गुणवत्तामूलक समस्याएँ आती हैं, जिसका एक परिणाम विद्यार्थियों द्वारा परीक्षा का बहिष्कार भी होता है। प्रश्नपत्र पर यह आरोप भी लगते रहे हैं कि प्रश्न *सिलेबस* से बाहर हैं, असंतुलित हैं, अबूझ हैं, बहुत मुश्किल हैं या ग़ैर-स्तरीय हैं।

पाठ्यचर्या 1988 का मानना है कि मूल्यांकन को राज्य-स्तर पर तथा राष्ट्र स्तर पर मानक तय करने और उससे उपर उठने का काम करना चाहिए। कोठारी आयोग ने भी इस तरह की सिफारिश की है। वह रेखांकित करता है कि बहुत लम्बे समय से मूल्यांकन का इस्तेमाल अधिगमकर्ता के निष्पादन का फैसला सुनाने के लिए होता आया है, इसमें अकादमिकेत्तर पहलू तिरस्कृत होते आए हैं। इस तरह के मूल्यांकन में अधिगमकर्ता को धिक्कारा जाता है। पाठ्यचर्या अंक की जगह ग्रेड की वकालत करती है और मानती है कि अंक ने *साइकोमेट्रिक* तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य खो दिया है। अंक में पाए जाने वाले मामूली अंतर को जरूरत से ज्यादा महत्व दिया जाता है और उसे अधिगमकर्ता के विपक्ष में प्रयुक्त किया जाता है। इस पूरी प्रक्रिया में 'संयोग' नामक

कारक की उपेक्षा कर दी जाती है। पाठ्यचर्या का मानना है कि पर्चे के अभिकल्प (डिजाइन) को इस प्रकार बदलना होगा कि उससे संयोग नामक कारक के अतिरेक, आत्मनिष्ठता तथा *रट्टाफिकेशन* को कम किया जा सके। निबन्धात्मक, लघु-उत्तरीय प्रश्न तथा वस्तुनिष्ठ प्रश्न को उचित वजन दिया जाना चाहिए। मौखिक परीक्षा को परीक्षा में कैसे शामिल किया जाए इस संबंध में भी सोचे जाने की जरूरत है। पाठ्यचर्या का स्पष्ट मानना है कि भारतीय जनपरीक्षा का परिदृश्य यह बताता है कि वह अकादमिक या *साइकोमैट्रिक* के बनिस्पत परीक्षा के संगठन तथा प्रबंधन के पक्ष में ज्यादा है। अधिक संख्या का एक ही समय में प्रबंधन उसमें से एक है इसी में कदाचार भी पनपता है। इस संबंध में सिंह (1984) का कहना है कि ऐसी स्थिति में कदाचार करने और उसे रोकने वाले के बीच हमेशा लुका-छिपी का खेल चलता रहता है। पाठ्यचर्या इस संदर्भ में शिला स्तर पर बोर्ड के विकेन्द्रीकरण का सुझाव देती है। पर साथ में *स्कोर* की तुलनीयता को बरकरार रखने के प्रति सचेत करती है। पाठ्यचर्या यह पाती है कि नक्कल की भारी व्याप्ति इसलिए देखी जा रही है क्योंकि अंक तथा प्रमाण-पत्र का बहुत अधिक तथा आंतरिक मूल्यांकन का अवमूल्यन हुआ है। खुली पुस्तक एवं दूसरी सामग्री के इस्तेमाल करने को प्रोत्साहित करके इसे एक हद तक काबू में लाया जा सकता है।

नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क फॉर स्कूल एजुकेशन (एनसीएफएसई) 2000 का भी यह मानना है कि वर्तमान परीक्षा संज्ञानात्मक पक्ष तक ही सिमटी हुई है और ग़ैर-संज्ञानात्मक पक्ष की उपेक्षा करती है, संज्ञानात्मक पक्ष में भी स्मरण पर ही। मुख्यतः समस्या समाधान, सृजनात्मक चिंतन, सारांशीकरण, तर्फणा, निष्कर्ष निकालने जैसी क्षमताओं की उपेक्षा की जाती है। पाठ्यचर्या 2000 यह पाती है, 10वीं परीक्षा का निर्धारणवाद इतना है कि इस परीक्षा की तैयारी बहुत पहले से शुरू हो जाती है। यह एक विडम्बना की ओर ध्यान दिलाती है। विडम्बना है कि शिक्षा में आज अधिगमकर्त्ता केन्द्रित उपागम और केन्द्रीकृत परीक्षा सह-अस्तित्व में हैं। वह यह मानती है कि मूल्यांकन को सीखने-सिखाने का अभिन्न हिस्सा होना चाहिए, उसे मानवीय तथा कोर्स की प्रभाविकता, विषय-वस्तु, कक्षाई प्रक्रिया और विद्यार्थी विकास के बारे में पृष्ठ-पोषण देने वाला होने के साथ-साथ अधिगमकर्ता को उत्पादक एवं उत्तरदायी नागरिक के रूप में उभारने में मददगार होना चाहिए। एनसीएफएसई 2000 का मानना है कि मूल्यांकन में वह मौका होना चाहिए कि वहाँ हर विद्यार्थी अपनी क्षमता को प्रदर्शित कर सके। उसे विद्यार्थी की पृष्ठभूमि तथा पूर्व के अनुभव का अवधान होना चाहिए। विशिष्ट आवश्यकता वाले

विद्यार्थी के लिए वैकल्पिक मूल्यांकन का प्रावधान होना चाहिए। एनसीएफएसई 2000 मूल्यांकन में मौखिक परीक्षा, अवलोकन, *प्रोजेक्ट, एसाइनमेन्ट* जैसी चीजों को शामिल करने की सिफारिश करता है। वह *फॉरमेटिव* एवं *समेटिव* मूल्यांकन, दोनों के पक्ष में है। वह सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन, संचयी मूल्यांकन तथा स्व-मूल्यांकन एवं समवयस्क मूल्यांकन की भी सिफारिश करता है।

परीक्षा की नियतिवादी भयावहता को संजीदगी से लेते हुए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) द्वारा सन् 2005 में बनी पाठ्यचर्या ने इसके विभिन्न आयामों की शैक्षिक आलोचना प्रस्तुत की और परीक्षा को मानवीय एवं शैक्षिक रूप से संभावनाशील बनाने के उपाय भी सुझाए।

एनसीईआरटी द्वारा मार्च 2008 में तैयार किया गया 'परीक्षा प्रणाली में सुधार' नामक आधार पत्र यह मानता है कि 'भारत में विद्यालय बोर्ड की परीक्षाएँ' 21वीं सदी के 'ज्ञान समाज' और इसके नवाचारी समस्या-समाधानकर्ताओं की आवश्यकता के अत्यंत अनुपयुक्त हैं। परीक्षा, सामाजिक न्याय की जरूरत को पूरा नहीं करती, प्रश्नपत्र की गुणवत्ता गिरी हुई है, प्रश्नपत्र सामान्यतया रटन्त विद्या पर टिके हुए हैं, वह रिजनिंग (बुद्धि परीक्षा) तथा विश्लेषण जैसे उच्च अवस्था के कौशल की जाँच करने में असफल सिद्ध हुए हैं। परीक्षा में कल्पना द्वारा समस्या समाधान, रचनात्मकता तथा निर्णय लेने की क्षमता जैसी विशेषताओं के लिए कोई जगह नहीं है इसमें लचीलापन नहीं है जबकि पाठ्यचर्या 2005 के अनुसार होना यह चाहिए कि आकलन की परिधि में सीखने की प्रवृत्ति, रुचि, स्वतंत्रतापूर्वक सीखने की क्षमता, अवधारणात्मक विकास, समस्या समाधान तथा वास्तविक दुनिया में उसे प्रयोग करने की क्षमता, विश्लेषण, विवेचना जैसी विशेषताओं को आना चाहिए। उसे विद्यार्थियों को पृष्ठपोषण देने वाला तथा आगे का हासिल किए जाने योग्य मानक प्रस्तावित करने वाला होना चाहिए। आधार पत्र 'परीक्षा प्रणाली में सुधार' यह पाता है कि आज परीक्षा 'एक नीति सबके लिए उपयुक्त' के सिद्धान्त पर आधारित है, यह भिन्न प्रकार के शिक्षार्थियों एवं शैक्षिक वातावरण के लिए कोई छूट नहीं देती है, यह अत्यधिक तनावकारी तथा चिन्ता पैदा करने वाला तंत्र बन गई है- प्रमाण है परीक्षाजनित आत्महत्याएँ एवं नर्वस ब्रेकडाउन की बढ़ती घटनाएँ। परीक्षा लेने के तौर-तरीके में विश्वसनीयता एवं पारदर्शिता का अभाव है। परीक्षा में ग्रेड देने तथा अंक रिपोर्ट में अक्सर पूर्ण प्रकटीकरण एवं पारदर्शिता का अभाव होता है। इसलिए

परीक्षा-प्रणाली में सुधार की आवश्यकता है। वह मानता है कि स्कूल आधारित मूल्यांकन की क्रियात्मक एवं विश्वसनीय व्यवस्था बनाने की आवश्यकता है। चिंतन की प्रक्रिया, नई-पुरानी जानकारी के श्रोत की जानकारी, नई सूचना के उपयोग करने का ज्ञान एवं उसके विश्लेषण का ज्ञान, सीखे गए ज्ञान का तथ्यों पर प्रयोग करते हुए उसकी विवेचना एवं तर्क को मूल्यांकन में शामिल होना चाहिए।

परीक्षा परिणाम को विश्वसनीय एवं वैध बनाने के तौर-तरीकों पर पाठ्यचर्या 2005 कहती है कि विद्यार्थी को जाँचे गए पेपर मिलें, विद्यार्थी उसे फिर से लिखे फिर उसका शिक्षक द्वारा मूल्यांकन हो, विद्यार्थी से यह पूछा जाए कि उन्होंने जो उत्तर दिया वह क्यों दिया ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि विद्यार्थी इस प्रक्रिया में कुछ सीखा है। इसे विश्वसनीय बनाने के क्रम में होना तो यह चाहिए कि परिणाम अभिभावकों को यह बताने का काम करे कि उनके बच्चे के सीखने तथा विकसित होने की प्रगति क्या है। वह यह बताए कि शिक्षा के उद्देश्य की राह में विद्यार्थियों को तैयार करने में हम कहाँ पहुँचे हैं। आधार पत्र 'परीक्षा-प्रणाली में सुधार' यह मानता है कि परीक्षा का काम यह नहीं है कि वह विद्यार्थियों को शिक्षा के अगले सोपान में भेजने का काम करे बल्कि उसका काम पाठ्यक्रम के सफलतापूर्वक समापन को प्रमाणित करने का है (निश्चित रूप से यह प्रमाणीकरण अर्जित की गई दक्षताओं का होना चाहिए)। इसका यह काम नहीं है कि वह किसी व्यावसायिक पाठ्यक्रम, रोजगारपरक पाठ्यक्रम या किसी अन्य के लिए 'प्रवेश' परीक्षा का काम करे।

आधार पत्र 'परीक्षा-प्रणाली में सुधार' औपनिवेशिक विचारधारा के बरअक्स वैसी परीक्षा-प्रणाली संस्तुत करता है जिसमें शिक्षक को कमजोर करने की जगह उनका सशक्तिकरण होगा। वह वास्तव में विद्यार्थियों के प्राथमिक मूल्यांकनकर्ता के रूप में शिक्षकों पर भरोसा करेगा। पत्र यह मानता है कि परीक्षा को उसकी संज्ञानात्मक परिधि से निकालकर अन्य आयामों तक ले जाना चाहिए। एनसीएफ 2005 का तर्क यह है कि जिसका आकलन नहीं किया जाता वह उपेक्षित होने लगता है, जैसे संवेगात्मक, सौन्दर्यात्मक एवं खिलाड़ी भाव जैसे पक्ष। पत्र ऐसी परीक्षा-प्रणाली चाहता है कि जिसमें विद्यार्थी इसे बोझ के रूप में न लेकर उपचार एवं सीखने के अग्रिम साधन के रूप में लें। दस्तावेज स्कूल आधारित, शिक्षक-संचालित न्यायपूर्ण मूल्यांकन की जरूरत बताता है। इसके अनुसार परीक्षा तब हो जब विद्यार्थी इसकी मांग करे। वह इसे चाहे तो किताब खोलकर लिख सकता है।

आधार पत्र – 'परीक्षा-प्रणाली में सुधार' का यह कहना है कि आज़ाद भारत में शिक्षा का काम पाठ्यपुस्तक के जरिए पाठ्यपुस्तकीय ज्ञान का प्रसार करना था और परीक्षा का काम उस प्रसारित ज्ञान की जाँच करना। आज़ाद भारत में शिक्षा के सामने दो प्रमुख लक्ष्य थे- एक राष्ट्र-निर्माण और दूसरा औद्योगिक श्रमिक वर्ग को तैयार करने का काम। शिक्षा में ये दोनों प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलीं जिसकी वजह से इन्हें शिक्षा को समरूप करने की जरूरत पड़ी। इस वजह से शिक्षा में भिन्नता लचीलापन लाने पर जोर नहीं दिया गया। वैयक्तिक अधिगमकर्ता के कल्याण की बात तो इस राजनैतिक एवं आर्थिक उद्यम के अधीन हो गई। पत्र का यह भी मानना है कि संज्ञानात्मक आयाम में भी भारतीय स्कूल बोर्ड की परीक्षा बामुश्किल ही वांछित क्षमताओं, पाठ्यचर्या के उद्देश्यों की कोई विश्वसनीय जाँच करती है।

आधार पत्र 'परीक्षा-प्रणाली में सुधार' परीक्षा से जुड़ी जिन समस्याओं की तरफ हमारा धयान खींचता है वे हैं- साल-दर-साल एक ही तरह के प्रश्नों का दुहराव, अस्पष्ट वाक्यांश वाले प्रश्न, संभवत: पाठ्यपुस्तक के सभी अध्यायों को शामिल करने का प्रयास करने वाले अत्यधिक लंबे प्रश्न। प्रश्नपत्र लीक न हो इसके दबाव में प्रश्नपत्र निर्माण की प्रक्रिया का ठीक से लोकतंत्रीकरण न होना तथा पर्याप्त अकादमिक सामग्री का सहयोग न मिल पाने की स्थिति में ख़राब-गुणवत्ता वाले प्रश्नपत्र का निर्माण।

एनसीएफ 2005 इस दिशा में एक विकल्प सुझाता है। वह यह कि इस समझ से निकला जाना चाहिए जिसके तहत यह मान लिया जाता है कि अच्छे प्रश्न बनाने का मुद्दा पेपर सेटिंग के दरम्यान किया जाने वाला केवल कुछ महीनों का काम है। इसकी जगह होना यह चाहिए कि वर्ष भर प्रश्नपत्र मंगाने की प्रक्रिया स्थापित की जाए। प्रश्न विभिन्न अनुशासनों से संबंद्ध कॉलेज के प्रोफेसर, दूसरे राज्यों के शिक्षाविद्ों और विद्यार्थियों से भी मंगाना चाहिए। इस संदर्भ में सिंह (1974) परीक्षा एवं अधयापन में एक्य देखते हुए यह सुझाते हैं कि शिक्षक जो पढ़ाता है उससे संबंधित कम से कम एक सवाल परीक्षा संपादित करने वाले इकाई को मंगवाना चाहिए। यह सवाल ऐसे हों जिन पर शिक्षक चर्चा-विमर्श करवा चुके हों। ऐसे प्रश्नों की एक लिस्ट तैयार की जाए। इसमें यह ध्यान रखा जाए कि सवालों का यह पुंज सिलेबस के हर हिस्से को समेटे हो। दूसरी बात यह है कि सवालों की संख्या अच्छी-ख़ासी हो और तीसरी बात यह कि इसे हर साल परिवर्तित किया जाए। पुन: इन सवालों के पुञ्ज को विद्यार्थियों के पास चर्चा-विमर्श के लिए भेजा जाए। विद्यार्थियों को भी प्रश्न बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। उनके द्वारा

बनाए गए प्रश्नों पर भी चर्चा हो और प्रश्नों के उपरोक्त पुञ्ज में शामिल करने के लिए इसे भेजा जाए। प्रश्नों की इस सूची से प्रश्नपत्र बनाना आसान हो जाएगा। इससे यह भी संभव होगा कि एक ही प्रश्नपत्र में भिन्न-भिन्न प्रश्नों का सेट हो। इसमें प्रत्येक अपने पूर्ववर्ती से कठिनाई के लिहाज से आगे बढ़ा हुआ हो। इसमें विद्यार्थी को यह आजादी हो कि वह कोई भी सेट चुन ले। इसमें अलग-अलग सेट से अलग-अलग प्रश्न चुनने की आजादी नहीं होगी।

एनसीएफ 2005 परीक्षा में व्याप्त विषमता की पहचान करते हुए कहता है कि शहरी मध्यवर्गीय बच्चों पर अच्छा करने का बहुत ज्यादा दबाव रहता है वहीं जबकि ग्रामीण बच्चे यह आश्वस्त नहीं होते कि उनकी तैयारी इतनी भी है कि वे सफलता प्राप्त कर सकें। एनसीएफ 2005 यह स्पष्ट मानता है कि, ''असफलता की उँची दर, विशेषकर ग्रामीणों, गरीबों, सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के बच्चों में जिस तरह से देखने में आती है उससे लगता है कि संपूर्ण मूल्यांकन या परीक्षा पद्धति पर गहरे विचार करने की जरूरत है'' (पृ. 128)। वह यह पाता है कि यह अन्तर इस वजह से है क्योंकि ग्रामीण विद्यार्थी, गणित और अंग्रेजी में खराब प्रदर्शन करते हैं और चूँकि अगली कक्षा में पहुँचने के लिए सभी विषयों में समान प्रदर्शन प्रगति का मानक है, जिस पर कि वे नहीं पहुँच पाते, फलतः फेल हो जाते हैं।

एनड्रेस (2004) अपने शोध में चीन के संदर्भ में यह स्थापित करते हैं कि कॉलेज परीक्षा के ख़त्म करने का प्रभाव यह हुआ कि चीन में ग्रामीण शिक्षा का विस्तार हुआ और साथ में ग्रामीण उन्मुखीकृत पाठ्यचर्या का विकास भी हुआ। इसका एक परिणाम यह भी निकला कि पहली बार माध्यमिक स्कूल शैक्षिक कार्यक्रम का हिस्सा बना। इससे शिक्षा का लक्ष्य बदल गया। स्कूल सबसे अच्छे विद्यार्थियों को चुनकर नामांकित करने की जगह गाँव के सभी बच्चों को स्कूल में लाने का काम करने लग गया। इस तरह कुछ ही वर्षों में माध्यमिक स्कूल अभिजात्य स्कूलों से रूपान्तरित होकर जनशाला बन गए।

गणित, अंग्रेजी जैसे विषयों में ग्रामीण विद्यार्थियों के अपेक्षाकृत अधिक अनुत्तीर्ण दर के संदर्भ में एनसीएफ 2005 एक विकल्प सुझाती है। वह यह कि बोर्ड को चाहिए कि वह सभी विषयों में पास होने के लिए विद्यार्थियों को दो स्तरों में से एक, यहाँ तक कि तीन स्तरों में से एक पर परीक्षा देने का अवसर दे।

परीक्षा परिणामों में पाई जाने वाली विषमता (विभिन्न कोटियों के मध्य मसलन शहरी-ग्रामीण) को कम करने के संदर्भ में आधार पत्र 'परीक्षा-प्रणाली में सुधार' एक और उपाय की तरफ ध्यान खींचता है और वह है बहुविकल्पीय प्रश्न। इस संदर्भ में एक प्रयोग का उल्लेख दस्तावेज इस प्रकार करता है, ''कर्नाटक के डी.एस.ई.आर.टी. के विवरणों के अनुसार जहाँ हाल के वर्षों में 60 प्रतिशत बहुविकल्पीय प्रश्न प्रणाली कई विषयों के परीक्षण में अपनाई गई है, वहाँ विद्यार्थी में कम व्यग्रता, अधिक उत्तीर्ण प्रतिशत, ग्रामीण एवं नगरीय प्राप्तांक में फासला कम पाया गया है।

आधार पत्र – 'परीक्षा-प्रणाली में सुधार' यह मानता है कि विभिन्न प्रकार के विद्यार्थी भिन्न-भिन्न प्रकार से सीखते हैं। किसी विद्यार्थी की वाचिक निपुणता, लेखन से अच्छी होती है। कुछ विद्यार्थी बहुत धीरे काम करते हैं परन्तु गहन सूक्ष्मदृष्टि के साथ करते हैं। कुछ विद्यार्थी अकेले की अपेक्षा समूह में बेहतर काम करते हैं। अत: सभी विद्यार्थियों का एक ही तरह की लिखित परीक्षा से मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। परीक्षा के विषमतामूलक व्यवहार के संदर्भ में यह दस्तावेज अपनी पक्षधरता को सफाई एवं दृढ़ता के साथ इन शब्दों में रखता है, ''जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति आवश्यक रूप से निश्चित कर लेता है कि शिक्षा एवं आकलन पद्धतियाँ सभी सामाजिक वर्गों के प्रति निष्पक्ष हों, ठीक उसी प्रकार हमें निश्चित कर लेना चाहिए कि ये विशेष प्रकार के शिक्षार्थियों के प्रति भेदभाव न करें'' (पृ. 12)। आकलन के विविध प्रकारों का उपयोग (मौखिक परीक्षण एवं सामूहिक कार्य मूल्यांकन), प्रत्येक व्यक्ति से प्रत्येक विषय की पूरी जानकारी की अपेक्षा न करना, परीक्षा के समय में लचीलापन तथा प्रदर्शन के विस्तृत प्रतिवेदन को गुणवत्ता सुधार का उपाय बतलाया गया है।

एनसीएफ 2005 का मानना है कि यदि प्रत्येक दिन के शिक्षण, विद्यार्थियों के साथ होने वाली अन्त:क्रिया, उनकी गतिविधि तथा शिक्षकों द्वारा किए जाने वाले विद्यार्थी अवलोकन, प्रत्येक दिन की अध्यापकीय डायरी, छोटे-छोटे एसाइनमेंट, विद्यार्थी से पूछे गए प्रश्न और उनके उत्तर को यदि आकलन एवं मूल्यांकन में शामिल किया जाए तो इसकी गुणवत्ता बढ़ेगी। अधिगम को 'प्रदा' (आउटपुट) का ही केवल मूल्यांकन करने वाला नहीं होना चाहिए बल्कि वह अधिगम के अनुभव को भी मूल्यांकित करने वाला होना चाहिए। परीक्षा में गुणात्मकता लाने के विमर्श को आगे बढ़ाते हुए कहता है कि परीक्षा की प्रतियोगी प्रेरणा बाह्य प्रेरणा है जोकि शिक्षणशास्त्रीय आधार पर टिकाऊ एवं दूरगामी नहीं है। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि विद्यार्थी पहलकदमी की रुचि खो

बैठता है। वह अपनी रुचि, संतुष्टि के लिए काम करने की प्रेरणा खो बैठता है। यह उन्हें समूह कार्य के लिए अनुपयुक्त बनाता है और उन्हें व्यक्तिवादी बना देता है।

**पाठ्यचर्या – 2005**

कुमार (2012) के लेख से इस बात की पुष्टि होती है कि भारत के संदर्भ में माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक की परीक्षा लेने वाली सीबीएसई जैसी बड़ी संस्था का प्रमुख काम है परीक्षा के जरिए विद्यार्थियों को एक लम्बवत् रेखा में 'प्राकृतिक रूप' से बांटना। सीबीएसई का यह काम विश्वविद्यालयों तथा अन्य संस्थाओं को यह सहुलियत देता है कि वे इसका उपयोग अपने यहाँ विद्यार्थियों को दाख़िला देने के लिए कर सकें। भारतीय शैक्षिक संदर्भ में कुमार (2012) अपने लेख में यह रेखांकित करते हैं कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 ने परीक्षा के संबंध में कई महत्वपूर्ण सुधार सुझाए हैं जिसमें एक महत्वपूर्ण सुझाव परीक्षा में पूछे जाने वाले प्रश्नों की प्रकृति के संबंध में है। वह इसलिए क्योंकि कक्षा 10 एवं कक्षा 12 के अन्त में ली जाने वाली जन-परीक्षा, साल भर कक्षा में 'क्या पढ़ाया जाए और कैसे पढ़ाया जाए' जैसे महत्वपूर्ण शिक्षणशास्त्रीय पक्ष को गहरे तौर पर प्रभावित करती है। वे पाते हैं कि विभिन्न मुद्दों के साथ संलग्नता, सक्रियता (इन्गेजमेन्ट) तथा उनकी समझ बनाने वाले शिक्षणशास्त्र की मांग करने वाली राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 के आधार पर बनी नई पाठ्यपुस्तकों के संदर्भ में भी परीक्षा में पूछे जाने वाले प्रश्नों की प्रकृति के कारण, शिक्षक पर यह दबाव बना रहता है कि वे इन पुस्तकों को भी इस तरह से पढ़ाएँ कि विद्यार्थी रटे हुए प्रश्नों का जवाब उगल सकें। इस मजबूरी की रिक्तता को कम करने के लिए 2005 की पाठ्यचर्या ने परीक्षा सुधार के कई मूलगामी सुझाव दिए हैं।

बालकेन्द्रित उपागम की वकालत करने वाली सन् 2005 की पाठ्यचर्या इस बात पर जोर डालती है कि मूल्यांकन को वह जरिया बनना चाहिए जिससे कि वह शिक्षणशास्त्र को बच्चों की जरूरत के लिहाज से समायोजित कर सके। वे कहते हैं कि समग्र मूल्यांकन पद्धति का विचार केन्द्रीय है जिसके लिए पाठ्यचर्या 2005 यह सही ही मानती है कि शिक्षक की पेशेवर हैसियत एवं स्वायत्तता में सुधार लाया जाना चाहिए। कुमार (2012) ध्यान दिलाते हैं कि पाठ्यचर्या 2005, परीक्षा के संबंध में जिन मुद्दों को चिन्हित करती है उन्हें सीबीएसई के द्वारा कम ही सम्बोधित किया गया है। इधर के वर्षों में उसके द्वारा उठाए गए कदमों से जाहिर होता है। परीक्षा एवं शिक्षक की हैसियत एवं स्वायत्तता के महत्वपूर्ण रिश्ते को भी वह भूले हुए हैं।

परीक्षा संबंधी तनाव एवं चिन्ता को कम करने की हिमायत करते हुए आधार पत्र 'परीक्षा-प्रणाली में सुधार' यह ध्यान दिलाता है कि, ''परीक्षाए, तंत्र की सुविधा के लिए निर्मित कृत्रिम परिस्थितियाँ हैं, न कि व्यक्तिगत शिक्षार्थी के लिए'' (एनसीईआरटी, पृ. 14)। परीक्षा जनित तनाव को कम करने के लिए यह छोटी परीक्षाओं की संस्तुति करता है। इस संदर्भ में वह परीक्षा की अवधि की दीर्घता को कम करना, अपेक्षित उत्तरों की संख्या व देय समय में उत्तरों की मात्रा में कमी, मार्गदर्शी परियोजनाएँ (जिसमें परीक्षाओं में समय की सीमा न हो), स्मृति परीक्षण की जगह दक्षताओं के परीक्षण पर जोर, खुली-पुस्तक परीक्षा, परीक्षा-परिणाम से अनुत्तीर्ण शब्द का निष्कासन एक या अधिक परीक्षाओं को फिर से देने के कई अवसर, ऐच्छिक 10वीं श्रेणी की बोर्ड परीक्षा जैसे उपाय सुझाता है।

परीक्षा में व्याप्त विषमता को कम करने के लिहाज से दस्तावेज एक महत्वपूर्ण विचार पेश करता है और वह है 'अंकतालिका में पारदर्शिता एवं निष्पक्षता बरतने का विचार।' उसका कहना है कि परीक्षा परिणाम यह बताने वाला हो कि एक विद्यार्थी अपने समकक्ष विद्यार्थियों की तुलना में किस तरह सफल है। वह मानता है कि ''इस समय 'पंजीकरण' और ग्रेड प्रतिवेदन के कम्प्यूटरीकरण के साथ ही अंकतालिका में प्रदर्शन प्रतिमानों का विस्तृत निरूपण-पूर्ण अंक/ग्रेड, किसी एक विषय में विद्यार्थियों के मध्य शतमक श्रेणी, समकक्ष विद्यार्थियों के मध्य शतमक श्रेणी (उदाहरणस्वरूप एक ग्रामीण या शहरी खंड के स्कूल) देना संभव है। दस्तावेज का मानना है कि यदि दो विद्यार्थियों ने 75 प्रतिशत अंक प्राप्त किए हैं पर इसमें से एक विद्यार्थी दक्षिण मुंबई के एक स्कूल में पढ़ा है और दूसरा ग्रामीण क्षेत्र के किसी एक स्कूल में तो केवल 75 प्रतिशत अंक के आधार पर यह कैसे कहा जा सकता है कि दोनों समान योग्यता वाले हैं। कारण साफ है कि ग्रामीण विद्यार्थी को व्यवस्थागत बड़ी विषमताओं को पार करना होता है।

वर्तमान परीक्षा के गहन ऐतिहासिक विश्लेषणपूर्वक समस्या पहचान एवं विकल्प सुझाव के बाद आधार पत्र यह भी सुझाता है कि परीक्षा एवं शिक्षणशास्त्र को एकाकी में देखे जाने के ख़तरे हैं। अत: सुधार का चतुर्दिक होना आवश्यक है। वह कहता है कि एकमात्र परीक्षा-प्रणाली में सुधारों से बहुत कुछ हासिल नहीं होगा जब तक कि इसे दूसरे आधारभूत सुधारों के साथ संलग्न नहीं किया जाता जैसे शिक्षक-प्रशिक्षण, शिक्षक गुणवत्ता और शिक्षक विद्यार्थी अनुपात में सुधार। इसके अलावा पाठ्यपुस्तकों और

पाठ्यचर्या को ज्यादा प्रासंगिक, रुचिपूर्ण और चुनौती भरा बनाना और शिक्षा में ज्यादा व्यय करना (सभी स्तरों पर, लेकिन फिलहाल विशेष रूप से माध्यमिक शिक्षा के लिए) अत्यावश्यक होगा। इसी के साथ यह भी माना जाना चाहिए कि परीक्षा सुधारों में शिक्षा सुधार की तरफ ले जाने की क्षमता है। इस संदर्भ में सिंह (1974) का तर्क है कि परीक्षा एवं अध्ययन-अध्यापन में ऐक्य है। इसलिए यह मानना भ्रम है कि परीक्षा में सुधार कर लेने से अध्यापन में अपने आप सुधार हो जाएगा। उनका कहना है कि जिसकी तैयारी नहीं करवाई गई हो उसकी परीक्षा लेने की उम्मीद कैसे की जा सकती है और विद्यार्थी स्वीकार भी करेंगे इसकी आशा कैसे की जा सकती है।

## संदर्भ


इस्कसटीयन, एम. और नोह, हे.जे. (1989). फॉक्स ऑफ कन्कशन्स ऑफ सैकेण्डरी स्कूल लीविंग एग्जामिनेशन. *कम्परेटिव एजुकेशन रिव्यू,* 33(3), पृ. 295-356.

एनड्रेस, जॉ. (2004). लेवलिंग द लिटिल पैगोडा : द इम्पेक्ट ऑफ कॉलेज एक्जामिनेशन एंड देयर एलिमिनेशन ऑन रूरल एजुकेशन इन चाइना. *कम्परेटिव रिव्यू, 48*(1), पृ. 1-47.

कुमार, के. (2012). पैडागोजी मार्केट द सी.बी.एस.ई. - पीयरसन टाई अप. *इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली XLVII* (47, 48), पृ. 18-20.

मानव संसाधन विकास मंत्रालय (एम.एच.आर.डी.) (1986). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986.* दिल्ली : भारत सरकार।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) (1975). द *करिकुलम फॉर* द *टेन-इयर स्कूल-ए फ्रेमवर्क.* नई दिल्ली : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी)।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) (1985). *नेशनल करिकुलम फॉर प्लानिंग फॉर प्राइमरी एण्ड सेकेन्डरी एजुकेशन - ए फ्रेमवर्क.* नई दिल्ली : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी)।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) (1988). *प्रारंभिक तथा माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या: एक रूपरेखा.* नई दिल्ली : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी)।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) (2000). *स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा.* दिल्ली : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी)।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) (2005). *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005.* नई दिल्ली : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी)।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) (2008). *परीक्षा प्रणाली में सुधार, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार-पत्र, नई दिल्ली :* राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी)।

सिंह, अमरीक (1974). एक्जामिनेशन्स : द स्ट्रेटेजी ऑफ चेंज। अमरीक सिंह एवं फिलीप जी. अल्टबाख (संपा.) द *हायर लर्निंग इन इण्डिया.* पृ. 291-310. दिल्ली : विकास पब्लिकेशन्स।

सिंह, अमरीक (1984). *आस्किंग फॉर ट्रबल : वाट इट मीन्स टू वी वाइस-चांसलर टूडे.* दिल्ली: विकास पब्लिकेशन।

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 24, अंक 3 दिसंबर, 2017

# प्रकृति के साथ सहजीवन की शिक्षा

**ऋषभ कुमार मिश्र***

वैश्विक तापन, मौसम में बदलाव, परिवर्तित होते ऋतु चक्र आज के समय की सच्चाई है। इस सच्चाई के दुष्परिणामों से बचने के लिए उपाय खोजे और सुझाए जा रहे हैं। इस संदर्भ में जिस तरीके पर सबसे ज्यादा विश्वास किया जा रहा है वह है जागरूकता। मीडिया जैसे प्रचार माध्यमों और विद्यालय जैसे सोद्देश्य समाजीकरण के संस्थानों में इस बात की शिक्षा दी जा रही है कि हम कैसे संसाधनों का सूझ बूझ के साथ उपयोग करें? पर्यावरण संरक्षण के लिए रोजमर्रा की जीवनशैली में बदलाव किस प्रकार करें? यह भी बल दिया जा रहा है कि मानवेतर जातियों, वनस्पतियों और जीवों की जरूरतां को भी समझा जाए, उन संसाधनों के उपभोग पर नियंत्रण किया जाए जो वैश्विक तापन में वृद्धि कर रहे हैं। जीवन शैली में बदलाव कहने के लिए तो सरलतम तो किंतु अपनाने के लिए में सर्वाधिक कठिन पक्ष हैं। इको-फ्रेंडली तरीकों के प्रचार-प्रसार से मीडिया भरा पड़ा है। इसे अपनाने के लिए सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित हो, इसके लिए सार्वजनिक आयोजन किए जा रहे हैं। काफी हद तक इसे अपनाया भी जा रहा है। इसके बरक्स यह भी सच्चाई है कि अन्ततः सुविधाओं के उपभोग और तनिक भी कष्ट न झेलने की आदत से मजबूर होकर हम पुनः प्रदूषण में योगदान करने लगते हैं। इस स्थिति में हम किस जीवनशैली को श्रेष्ठ मान रहे हैं, के साथ यह प्रश्न करने की जरूरत है कि जिस जीवनशैली को हम इको-फ्रेंडली मान रहे हैं, उसे स्थाई कैसे बनाएं? इन प्रश्नों का सामान्यीकृत उत्तर देना और इसके लिए नगरीकरण, जनसंख्या वृद्धि, प्रकृति का अतिदोहन जैसे कारणों को वैश्विक जलवायु परिवर्तन के लिए उत्तरदायी बताना, 'ढाक के तीन पात' की तरह है। वस्तुतः संपोषणीय जीवन शैली में प्रकृति के साथ जीवन को जीने का भाव है। इस तरह की एक संपोषणीय जीवन शैली मुझे महाराष्ट्र के वर्धा जिले के सेवाग्राम में स्थित आनंद निकेतन विद्यालय में देखने को मिली। इसके माध्यम से मैं

* सहायक प्रोफेसर, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

शिक्षा के उस स्वरूप पर प्रकाश डालना चाहूँगा जहां पर्यावरण संरक्षण का उपदेश नहीं बल्कि प्रकृति के साथ सहजीवन का अभ्यास है। जहां सीखने को साधन-संपन्नता की आड़ में सीखने को कृत्रिम बनाने के बजाय प्राकृतिक परिवेश में स्थापित किया गया है, जहां मानव और प्रकृति में अलगाव के बजाय सहअस्तित्व का संदेश है।

इस विद्यालय को 'प्रकृति की गोद' में बसा जैसे अतिरंजित विशेषण देकर विशिष्ट और वैकल्पिक बनाने के बदले कहूँगा कि यह विद्यालय, सेवाग्राम में चारों तरफ कंक्रीट के फैलते जंगल के बीच स्थित है। आज भी सेवाग्राम आश्रम और यह विद्यालय अधिकांशत: मिट्टी की दीवारों और खैपरल पर ही टिका हुआ है। जल की समस्या और गर्मी की अधिकता सेवाग्राम सहित विदर्भ क्षेत्र की समस्या है। बावजूद इसके परिसर में पीपल और बरगद के विशालकाय वृक्ष हैं जो अपनी छांव में परिसर को समेटे हुए हैं। पानी से लबालब कुएं हैं जो विद्यालय और परिसर में पानी की जरूरत को पूरा करते हैं। बताते चलें कि आनंद निकेतन विद्यालय कोई संरक्षित इमारत नहीं है। एक सामान्य विद्यालय की तरह यहां रोज बच्चे आते हैं। कक्षाएं चलती हैं। अनेक गतिविधियां होती हैं। विद्यालय का आरंभ शिक्षकों और विद्यार्थियों द्वारा स्वयं कक्षा को साफ करने से होता है। फर्श की मिट्टी से लिपाई-पुताई करना, झाड़ू मारना और कचरे का व्यवस्थित तरीके से निस्तारण प्रार्थना से पूर्व शिक्षकों और विद्यार्थियों द्वारा किया जाने वाला अभ्यास है। भवन की वार्षिक मरम्मत का कार्य ग्रीष्मावकाश में किया जाता है। विद्यालय की प्रार्थना सभा बिना किसी तामझाम और सैनिकीय अभ्यास के ध्वनि प्रसारक यंत्र की गैर मौजूदगी में होती है। विद्यालय के वरिष्ठतम अध्यापक, जो एक जमाने में इसी विद्यालय के विद्यार्थी भी रहे थे, हारमोनियम की धुन पर गांधी जी के प्रिय भजनों की तान झेड़ते हैं और सभी विद्यार्थी व शिक्षक उनका साथ देते हैं। आश्चर्य तो तब होता है जब प्रार्थना कक्ष के दस कदम की दूरी पर भी इस समूह गान की आवाज सुनायी नहीं देती और पूरा प्रार्थना कक्ष गुंजायमान रहता है। इसी तरह कक्षा में शिक्षण-अधिगम के दौरान भी चिल्ल-पों की ध्वनि यंत्रणा से परिसर मुक्त रहता है लेकिन कक्षा में संवाद-राग चलता रहता है। सफाई के लिए दण्ड या पुरस्कार का विधान नहीं है। विद्यालय के वयस्कों के व्यवहार का अनुकरण खुद को स्वच्छ रखने और अपने परिवेश को भी स्वच्छ रखने का संदेश देता है। कक्षाएं तो स्वच्छ रहती हैं विद्यालय की गलियां, खेल का मैदान और बरामदे इत्यादि में न तो प्लास्टिक, पॉलीथीन जैसे प्रदूषक पाएंगे न ही किसी भी प्रकार की गंदगी।

यहां इको-फ्रेंडली का आवरण नहीं ओढ़ा गया है बल्कि यह विद्यालय की स्वाभाविक गति में शामिल है। गांधी जी द्वारा प्रतिपादित नई तालीम में कताई को केन्द्रीय स्थान दिया गया है। इस विद्यालय में जब विद्यार्थी और शिक्षक कताई कर रहे थे तो देखा गया कि वे कताई के पूर्व कपास के बीज निकालने के दौरान इतनी सावधानी से प्रयास करते हैं कि कपास की लोई का एक भी तंतु व्यर्थ न जाए और बीज भी निकल आए। कपास का यह बीज भी कीमती होता है जिसका पुनः उपयोग किया जाता है। इस कार्य में मस्तिष्क और हाथ के सामंजस्य के साथ धैर्य भी दर्शनीय रहा। प्रकृति के साथ सीखने का अद्‌भुत उदाहरण खेती के कालांश में देखने को मिला। विद्यार्थी चाहे वह लड़का हो या लड़की बिना भेद भाव के, खेती को नकारात्मक दृष्टि से देखे बिना खुरपा, कुदाल और हंसिया लेकर अपने-अपने खेतों में लग जाते हैं। इससे तो एक ओर वे शारीरिक श्रम की प्रतिष्ठा के मूल्य को आत्मसात करते हैं तो दूसरी ओर खेती में देशज और वैज्ञानिक ज्ञान के तालमेल को सीखते हैं। इन खेतों में केवल जैविक खादों का उपयोग होता है। कृत्रिम रसायनों और कीटनाशकों का प्रयोग नहीं किया जाता है। बीज बोने से फसल के तैयार होने तक हर कार्य में विद्यार्थियों की भागीदारी होती है। इस कार्यानुभव में वे विज्ञान, गणित, भाषा और भूगोल के अनुशासनों को भी सीखते हैं और प्रकृति के साथ सहजीवन का आनंद भी लेते हैं। यह आनंद विद्यालय की पाकशाला में फलित होता है। विद्यालय के खेत की सब्जी ही दोपहर के भोजन में पकायी और परोसी जाती है। भोजन के दौरान ध्यान रखा जाता है कि भोजन का कोई भी अंश बर्बाद न हो। बर्तन को धोने के लिए पानी के बड़े जलधारकों की एक श्रृंखला लगी हुयी है। सबसे पहले जलधारक में जूठा धूला जाता है जिसका जल जानवरों आदि को पीने के लिए दिया जा सकता है। दूसरे जल धारक में बर्तन को राख या मिट्टी से धुलते हैं पुनः तीसरे जल धारक में पात्र को धोकर साफ कर लेते हैं। तीनों जलधारकों का पानी गुणवत्तानुसार अलग-अलग उपयोग हेतु प्रयोग कर लिया जाता है। विद्यालय परिवेश में प्रदूषकों के उत्पन्न होने की संभावना न्यूनतम है। यहां जो अपशिष्ट और वर्णित पदार्थ निकलते हैं उनका कम्पोस्ट खाद बनाने में उपयोग किया जाता है। यह द्रष्टव्य है कि इस कार्य को भी विद्यार्थी शिक्षकों की सहायता से करते हैं। विद्यालय में प्रयुक्त कागज-कॉपी आदि से जो कचरा तैयार होता है उसका पुनर्चक्रण करके फाइलें, फोल्डर और लिफाफे तैयार किए जाते हैं।

मिट्टी के बने भवन में शीतलता के लिए वातानुकूलन के यंत्रों की आवश्यकता नहीं है। हालांकि कमरों में पंखे टंगे हैं लेकिन इनकी जरूरत नहीं महसूस होती। मिट्टी से नियमित

लेपन, परिवेश में स्थानीय परिवेश के अनुकूल सघन वृक्ष जैसे– पीपल आदि की उपस्थिति परिसर से सटे खेत में खेत खुदाई–सिंचाई के कारण प्राकृतिक शीतलता बनी रहती है। कक्षा के बाहर ठंडे जल की सुविधा के लिए बड़े–बड़े मटके रखे गए हैं। जल के बर्बाद होने की संभावना को न्यूनतम करने के लिए शौचालयों में जल पात्र रखे हैं जिससे आवश्यकतानुसार का उपयोग किया जाता है। उल्लेखनीय है कि विद्यालय का शौचालय उतना ही स्वच्छ था जितना कि 'हाई–फाई' शौचालय स्वच्छ होता है। पेस्ट कंट्रोल के नाम पर ततैया आदि जीव जाति के वंश को नष्ट कर देने की जिद की बजाय प्राकृतिक तरीके से उनके आवास को स्थानान्तरित किया जाता है। इस परिसर के विशाल वृक्षों पर रात्रिचर पक्षियों के घोसले हैं। इसी तरह कक्षा की दीवारों पर गौरैया और पेड़की जैसे चिड़ियों ने घर बना रखा है। इन जीवजातियों के प्रति विद्यार्थियों में कुतूहल रहता है। वे इन्हें देखना, छूना और उनके बारे में जानना चाहते हैं लेकिन इन्हें उजाड़ना नहीं चाहते हैं।

एक आम विद्यालय में वृक्षारोपण करना, बिजली के स्विचों को बंद करना, कार पूल करना, जल की बर्बादी को रोकने का प्रयत्न करना आदि पर्यावरण संरक्षण के लिए किए जाने वाले प्रयासों में दिखता है। इसके समांतर ही बिना वातानुकूलन के न रह पाना, टायलेट में जल की बर्बादी, फर्श और दीवारों को धोने में जल का दुरूपयोग, पैकेट में बंद फास्ट फूड के रैपर जैसी सामग्रियों के रूप में प्रदूषकों का प्रयोग भी ऐसे ही विद्यालयों में दिखता है। इस स्थिति के उलट आनंद निकेतन विद्यालय प्रकृति के साथ सहजीवन का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करता है। इस विद्यालय में रोजमर्रा के अभ्यासों में विद्यार्थी जो देखते और सीखते हैं उसका प्रभाव उनके साथ विद्यालय के बाहर–घर और समुदाय तक पहुंचता है। न ही यह विद्यालय अति विशाल परिसर में स्थित है और न ही पर्यावरणविदों की कोई बड़ी फौज विद्यालय में सतत पोषणीय विकास की कार्ययोजना को क्रियान्वित कर रही है। विद्यालय के अध्यापक और विद्यार्थियों ने मिलकर विद्यालय को ऐसे प्राकृतिक पर्यावास के रूप में विकसित कर लिया है जहां सीखने का लक्ष्य प्रकृति के साथ सहजीवन की संस्कृति में फलित होता है।

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 24, अंक 3, दिसंबर 2017

# समुदाय सहभागिता एवं शिक्षा नीति के अंत:संबंधों का नीतिगत विश्लेषण

**संजय शर्मा*** एवं **धनंजय सिंह यादव****

**सारांश**

*शिक्षा में सामुदायिक भागीदारी एक ऐसा संप्रत्यय है जिसके द्वारा समुदाय शिक्षा से सम्बंधित विभिन्न कार्यों में अपनी सहभागिता करता है तथा शैक्षिक विकास एवं प्रबंधन में सहयोग प्रदान करता है। शिक्षा के रखरखाव तथा प्रबंधन में सहयोग सकारात्मक भूमिका में रहता है। समुदाय की भूमिका विद्यालयों में स्थानीय अभिकर्ता के रूप में होती है जिसके माध्यम से सुधार एवं विकास की उम्मीद की जा सकती है। शिक्षा में समुदाय की इसी महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए विभिन्न शिक्षायी नीतियों एवं आयोगों ने शैक्षिक विकास के लिए समुदाय की विद्यालयों में उपस्थिति को सर्वदा उपयुक्त माना है तथा यह माना है कि शिक्षा और समुदाय के जुड़ाव के परिणामस्वरूप विद्यालयी प्रबंधन, व्यवस्थापन एवं गुणवत्ता में बढ़ोतरी की जा सकती है। इस लेख में समुदाय और शिक्षा के संबंधों को व्याख्यायित करने के साथ-साथ शिक्षा में सामुदायिक भागीदारी के समक्ष आने वाली चुनौतियों को समझने तथा उनके लिए विकल्प सुझाने का प्रयास किया गया है।*

***मुख्य शब्द :*** *शिक्षा, समुदाय, सामुदायिक भागीदारी, विद्यालय प्रबंधन समिति।*

## शिक्षा एवं समुदाय सहभागिता : एक सन्दर्भगत व्याख्या

किसी भी क्षेत्र में कार्यक्रम के निर्माण, उसकी रूपरेखा बनाने तथा क्रियान्वयन में वहां के समुदाय की भूमिका एक मार्गदर्शक की होती है। स्थानीय समुदाय की भूमिका इसलिए भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि स्थानीय होने के कारण वहां के लोगों में स्थानीय स्थितियों की समझ अन्य लोगों की अपेक्षा बेहतर होती है। इसी प्रकार शिक्षा

*सहायक प्रोफेसर, शैक्षिक अध्ययन शाला, डा. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर म.प्र.-470003
**शोध छात्र, शैक्षिक अध्ययन शाला, डा. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर म.प्र.-470003

के संबर्धन एवं विकास हेतु समुदाय की भूमिका महत्वपूर्ण मानी गयी है, क्योंकि शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका सम्बन्ध न सिर्फ विद्यालयों से है बल्कि शिक्षा परिवारों तथा समाज से भी सम्बंधित है *(उमरिया : 1999)*। प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण की सफलता में जन सहभागिता को निर्णायक समझा जाता है *(भादू : 2006 : 34)* अर्थात शैक्षिक सार्वभौमीकरण की सफलता समुदाय की भागीदारी के स्तर पर भी निर्भर करती है। इसके साथ ही साथ शिक्षा का एक मकसद यह भी है कि वह सामाजिक संप्रेषण के अवसर भी मुहैया कराती है *(मैक्सिन बर्न्टसेन : 2017 : 19)*। समुदाय शिक्षा के व्यवस्थापन एवं प्रंबंधन में विविध रूप में अपनी भूमिका का निर्वहन कर सकता है। सामुदायिक सहभागिता शिक्षा से सम्बंधित विभिन्न प्रकार के शैक्षिक मुद्दों पर समुदाय के विभिन्न लोगों को एक साथ जोड़ने के संप्रत्यय को आगे बढ़ाता है तथा समस्या समाधान एवं निर्णय निर्धारण की प्रक्रिया में भागीदारी करने पर जोर देता है *(आरिफ : 2010 : 01)*। शिक्षा का मौलिक अधिकार अधिनियम- 2009 समुदाय के सहयोग से विद्यालयों में मूलभूत सुविधाओं के व्यवस्थापन, योजनाओं के निर्माण एवं क्रियान्वयन तथा किये गये कार्यों की देखरेख में समुदाय के सहयोग को एक अनिवार्य स्थिति मानता है। समुदाय द्वारा शिक्षा में सहयोग करने के प्रश्न पर *अमर्त्य सेन (2003)* का मानना है कि समुदाय के सहयोग के परिणामस्वरूप विद्यालयों में सुधार लाया जा सकता है, वे मानते हैं कि समुदाय विद्यालयों में पाठ्यपुस्तकों के वितरण, साफ सफाई बनाये रखने तथा मौलिक सुविधाओं की बढ़ोतरी में सहयोग कर सकता है। इस प्रकार यह समझा जा सकता है कि शिक्षा और समुदाय का एक अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है जहाँ वे एक दुसरे से काफी गहरे रूप से जुड़े हुए हैं। समुदाय की भूमिका शिक्षा के प्रबंधन एवं व्यवस्थापन के साथ-साथ शिक्षण अधिगम प्रक्रियाओं में भी महत्वपूर्ण होती है, वहीं दूसरी ओर शिक्षा की अपनी स्थिति भी समुदाय को गुणात्मक रूप से प्रभावित करते हुए दिशा देती है। सामुदायिक भागीदारी के परिणामस्वरूप जो मौलिक बदलाव देखने को मिलता है या जिस बदलाव की उम्मीद की जा सकती है वह है सामुदायिक भागीदारी के परिणामस्वरूप जो उम्मीद की जाती है उसमें विद्यालयों के प्रबंधन एवं व्यस्थापन की बेहतर स्थिति, आधारभूत सुविधाओं में बढ़ोतरी, नामांकन में इजाफा एवं गुणवत्ता में वृद्धि आदि प्रमुख तत्व हैं। इनमें जो सबसे महत्वपूर्ण स्थिति है वह है शैक्षिक गुणवत्ता में वृद्धि। शैक्षिक गुणवत्ता को महत्वपूर्ण कारक मानने की मुख्य वजह यह है कि शिक्षा और सामुदायिक भागीदारी से सम्बंधित जितने भी तत्व हैं सबका उद्देश्य शैक्षिक विकास में सहयोग करना एवं गुणवत्ता को बढ़ाना है। शैक्षिक गुणवत्ता की बात करें तो

यह माना जाता है कि गुणवत्ता इस बात पर निर्भर करती है कि विद्यालयों में किस तरह पढ़ाया जा रहा है तथा अधिगमकर्ता कितने बेहतर तरीके से सीखते हैं साथ ही साथ पढ़ाया जाने वाला विषय-वस्तु वर्तमान एवं भविष्य की जरूरतों से कितने सम्बंधित है। दूसरे शब्दों में अगर शैक्षिक गुणवत्ता को देखें तो शिक्षा में गुणवत्ता से तात्पर्य उन स्थितियों एवं सन्दर्भों से है जो बच्चों को अर्थपूर्ण एवं प्रासंगिक ज्ञान, उपयोगी कुशलताओं एवं वांछित अभिवृतियों के विकास में सहायक होती है*(शर्मा : 2010 : 02)*। अगर सामुदायिक सहभागिता के संप्रत्यय को देखें तो कुछ आलोचनाओं के बावजूद भी यह माना जा सकता है कि विद्यालयों में सामुदायिक भागीदारी बच्चों के सीखने एवं बेहतर अधिगम हेतु प्रमुख तत्व है । सामुदायिक भागीदारी से न केवल सुविधाओं के व्यवस्थापन में सहायता मिलती है बल्कि शिक्षा में गुणात्मक वृद्धि भी दर्ज की जाती है। सामुदायिक भागीदारी का संप्रत्यय भारतीय शिक्षा के सन्दर्भ में कोई नया नही है। सामुदायिक भागीदारी प्राचीनकाल से ही भारतीय शिक्षा व्यवस्था में विद्यमान है तथा आजादी के बाद से लेकर वर्तमान समय तक शिक्षा से सम्बंधित विभिन्न आयोगों एवं समितियों ने सामुदायिक भागीदारी के महत्व को स्वीकार किया है। कोठारी आयोग ने सामुदायिक भागीदारी के महत्व को स्वीकार करते हुए अपने प्रतिवेदन *'शिक्षा एवं राष्ट्रीय प्रगति'* में स्पष्ट किया है कि, 'शिक्षा राष्ट्रीय महत्व का विषय है, तथा प्रत्येक माता पिता का सम्बन्ध शिक्षा से है इसलिए शिक्षा और समुदाय को एक दुसरे के निकट संपर्क में रखकर ही एक दूसरे का विकास किया जा सकता है' *(भारतीय शिक्षा आयोग : 1964-66)*। शिक्षा के सार्वभौमिकरण हेतु भारत सरकार द्वारा किये जा रहे प्रयासों के क्रम में बने *नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009* में भी सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए *विद्यालय प्रबंधन समिति* के गठन को अनिवार्य माना है *(आर.टी.ई. एक्ट.-09 : धारा 21)*। विद्यालयों में नामांकित बच्चों के माता-पिता या अभिभावकों से मिलकर समिति का निर्माण किया जायेगा। इस प्रकार एक अनिवार्य संस्थागत तत्व के रूप में विद्यालयों में समुदाय की उपस्थिति को विद्यालय प्रबंधन समिति के माध्यम से स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

## शिक्षा में सामुदायिक भागीदारी : एक नीतिगत विमर्श

शिक्षा में समुदाय की उपस्थिति का विस्तृत इतिहास रहा है *(ब्रे : 2003 : 32)*। सामुदायिक भागीदारी की अगर बात करें तो शिक्षा में सामुदायिक भागीदारी वैश्विक परिप्रेक्ष्य में मौजूद रहा है। भारतीय सन्दर्भ में सामुदायिक भागीदारी प्राचीन काल से

लेकर वर्तमान समय तक शिक्षा में समुदाय की उपस्थिति सर्वदा विद्यमान रही है। शिक्षा के संचालन एवं व्यवस्थापन में समुदाय महत्वपूर्ण भूमिका में था, प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक की आवश्यकताओं की पूर्ति समाज के द्वारा की जाती थी *(शर्मा: 2016 : 19)*।

इस तरह समाज एवं शिक्षा एक दूसरे के पूरक बने हुए थे तथा शिक्षा का प्रबंध समुदाय करता था एवं शिक्षा समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करती थी। प्राचीन भारत में शिक्षा के केन्द्र गुरुकुल हुआ करते थे, जिनके प्रबंधन की जिम्मेदारी समुदाय की होती थी। इसके अतिरिक्त बौद्ध एवं मुगल काल में दी जाने वाली शिक्षा में भी समुदाय का सहयोग लगातार प्राप्त होता रहा। शिक्षा एवं समुदाय के बीच अलगाव की प्रक्रिया का प्रारंभ ब्रिटिशकालीन शिक्षा व्यवस्था के प्रारम्भिक अवस्था में प्रारम्भ हुई जिसमें सहायता अनुदान के नाम पर सरकार ने अपना सम्पूर्ण नियंत्रण शिक्षा पर स्थापित कर लिया। ब्रिटिश सरकार द्वारा अपने हाथों में शिक्षा का प्रबंधन लेने तथा सहायता अनुदान प्रणाली के माध्यम से शिक्षण विधि, शिक्षण विषय, पाठ्यचर्या इत्यादि के सम्बन्ध में लिए जाने वाले निर्णयों के परिणामस्वरूप समुदाय एवं शिक्षा के बीच एक लकीर सी खींच दी गयी।

किन्तु कुछ समय पश्चात् शिक्षा एवं समुदाय को फिर से जोड़ने का प्रयास किया गया जिसके क्रम में भारतीय शिक्षा आयोग (1882) ने प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व नगरपालिकाओं और जिला परिषदों को सौपने का सुझाव दिया और कहा कि इन स्थानीय संस्थाओं का प्राथमिक शिक्षा पर पूरा नियंत्रण और अधिकार होगा तथा ये जनता के लिए आवश्यकतानुसार स्कूलों की स्थापना करके स्कूलों को अनुदान दें व प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करें। समस्त सरकारी प्राथमिक स्कूलों को आवश्यक रूप से स्थानीय संस्थाओं को सौंप दिया जाए। स्थानीय संस्थाएँ प्राथमिक शिक्षा के लिए पृथक कोष स्थापित करें। स्थानीय संस्थाओं की प्राथमिक शिक्षा के लिए निश्चित धन पर पूर्ण अधिकार होगा तथा प्रांतों द्वारा शिक्षा के लिए स्वीकृत धनराशि के अधिकतर भाग पर प्राथमिक शिक्षा का अधिकार होगा *(अश्विनी : 2012 : 26)*।

स्वतंत्रता के पश्चात् अनेक कार्यक्रम एवं नीतियों का क्रियान्वयन शैक्षिक उन्नयन के लिए किया गया। इन नीतियों एवं कार्यक्रमों में शिक्षा एवं समुदाय के रिश्तों को पुनः परिभाषित करने का प्रयास किया गया तथा शिक्षा को समुदाय से जोड़ने के लिए अनेक प्रावधान किये गए। समुदाय एवं शिक्षा के सम्बन्ध के महत्व को बताते हुए *यूनेस्को ने दिल्ली घोषणा-पत्र (1994)* जिसमें विश्व की 9 सर्वाधिक आबादी वाले देशों ने

सहभागिता की थी, में बताया कि शिक्षा एक सामाजिक जिम्मेदारी है जिसमें सरकारों, परिवारों, समुदायों एवं गैर-सरकारी संगठनों को इसकी जिम्मेदारी उठानी चाहिए तथा सभी को इस महान कार्य के लिए संगठित होना चाहिए, जिससे कि सभी के लिए शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके *(ब्रे : 2003 : 32)*।

आजादी के बाद गठित पहले भारतीय आयोग, विश्वविद्यालय आयोग ने भी सामुदायिक जरूरतों को ध्यान मे रखते हुए ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि विश्वविद्यालय की स्थापना की बात कही थी। प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की सफलता में जन सहभागिता को निर्णायक समझा जाता है *(भादू : 2006 : 34)*। लेकिन इस क्रम में अब तक किये गये प्रयास असंतोषजनक ही रहे हैं। प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के सन्दर्भ में यह माना गया है कि शिक्षा सरकारों की जिम्मेदारी हैं किन्तु यह राष्ट्रीय महत्व का भी विषय है अत: शिक्षा के विकास एवं संबर्धन हेतु जन समुदाय को भी सम्मलित होना चाहिए तथा इसके विकास के लिए सामूहिक प्रयास किया जाना चाहिए *(मा. शि. आ. 1964)*।

शिक्षा के विकास के सम्बन्ध में यूनेस्को ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि विश्व में लगभग 264 मिलियन बच्चे और युवा स्कूल नहीं जा पा रहे हैं। यह एक ऐसी विफलता है जिसका समाधान सभी को मिलकर करना होगा क्योंकि शिक्षा एक साझा जिम्मेदारी है तथा शिक्षा के विकास का उत्तरदायित्व सभी को लेना होगा। इसमें कहा गया है कि, ''समग्र समान और अच्छी गुणवत्ता वाली शिक्षा सुनिश्चित करना प्राय: एक सामूहिक प्रयास होता है, जिसमें सभी कार्यकर्ता अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए संगठित प्रयास करते हैं *(यूनेस्को : 2017-18 : 07-08)*।

शिक्षा में सामुदायिक भागीदारी समुदाय एवं विद्यालयों के आपसी संवाद एवं सम्बन्धों के आधार पर संचालित होती रही। सामुदायिक भागीदारी का सम्बन्ध नीतिगत होने की अपेक्षा सामाजिक-सांस्कृतिक सम्बन्धों पर अधिक आधारित थी। शिक्षा में सामुदायिक भागीदारी हेतु व्यवस्थित एवं नीतिगत प्रयास भारतीय शिक्षा आयोग *(1964-66)* के गठन के पश्चात प्रारंभ हुआ। भारतीय शिक्षा आयोग के बाद भी जितने आयोग एवं समितियाँ बनीं, सबने सामुदायिक भागीदारी के महत्व को स्वीकार किया तथा सामुदायिक भागीदारी हेतु विशेष प्रयास किया।

**भारतीय शिक्षा आयोग (1964-66)**- भारतीय शिक्षा आयोग या कोठारी आयोग पहला ऐसा आयोग था जिसने शिक्षा के लगभग सभी पहलुओं पर गइराई से प्रकाश डाला। शिक्षा के विकास हेतु आयोग ने शिक्षा की संरचना, प्रबंधन एवं व्यवस्थापन

इत्यादि से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिए। आयोग का विचार था कि शिक्षा की व्यवस्था स्थानीय जन समुदाय के घनिष्ठ सहयोग से की जा सकती है। आयोग का कहना था कि विद्यालयों के अन्दर कुछ समस्याएँ मौजूद हैं जो व्यवस्थापन एवं प्रबंधन से सम्बन्धित हैं। आयोग ने सार्वजनिक विद्यालयों से सम्बन्धित समस्याओं के सम्बन्ध में बताया कि बहुत अधिक संख्या उन विद्यालयों की है जिनका शैक्षिक प्रदर्शन औसत है तथा कुछ विद्यालय ऐसे हैं औसत से नीचे तथा कुछ ही विद्यालय ऐसे हैं जो औसत से उच्च शैक्षिक निष्पत्ति हासिल कर पा रहे हैं। जो विद्यालय औसत निष्पत्ति हासिल कर पा रहे हैं उसका मुख्य कारण उन विद्यालयों का उनके स्थानीय समुदाय से अलगाव है।

इन समस्याओं के समाधान के लिए एक ऐसे कार्यक्रम की जरूरत है जिसमें स्थानीय समुदाय एवं सरकार द्वारा साथ-साथ प्रयास किया जाय जिससे देश को पर्याप्त तथा बहुत अधिक निवेश किये बिना ही स्कूलों को बेहतर बनाया जा सके *(कोठारी आयोग: 1964-66 : 451)*।

आयोग ने विद्यालयों के विकास हेतु समुदाय को निम्न तरीकों से विद्यालयों से जोड़ने का प्रयास किया तथा बताया कि निम्न कार्यों में समुदाय की भूमिका हो सकती है:

- समुदाय को विद्यालयों रखरखाव एवं निर्माण कार्यों में विद्यालयों का सहयोग करके।
- पुस्तकों एवं लिखित सामग्री के वितरण द्वारा।
- ड्रेस, छात्रवृति एवं पुरस्कारों के माध्यम से।
- स्थानीय स्थितियों में अनिवार्य शिक्षा के प्रवर्तन द्वारा।
- अध्यापकों को आवासीय सुविधाओं में सहयोग।

भारतीय शिक्षा आयोग शिक्षा और समुदाय के सम्बन्धों का एक वृहद स्वरूप प्रदान करता है तथा सम्पूर्ण स्थानीयता को विद्यालयों के दायरे में समाहित करता है। आयोग विद्यालयों के अन्दर समुदाय के पूर्ण भागीदारी हेतु स्थान प्रदान करता है तथा आयोग यह दृढ़ विचार व्यक्त करता है कि स्थानीय प्राधिकरण की भागीदारी से विद्यालय एवं समुदाय के रिश्ते मजबूत बनेंगे, उनके बीच बेहतर विश्वास स्थापित हो सकेगा एवं विद्यालयों में शैक्षिक उन्नयन आयेगा। भारतीय शिक्षा व्यवस्था की स्थिति में गुणात्मक उन्नयन एवं तात्कालिक शैक्षिक समस्याओं के समाधान के लिए भारतीय शिक्षा आयोग का गठन किया गया। आयोग ने शिक्षा के विकेन्द्रीकरण के माध्यम से समुदाय को स्कूलों

में जोड़ने की बात कही है तथा यह माना कि विद्यालयों के प्रबंधन, शिक्षण एवं आधारभूत संरचनाओं में वृद्धि हेतु स्थानीय जन-समुदाय का सहयोग लिया जाये *(कोठारी आयोग : 1964-66)*। भारतीय शिक्षा आयोग क्रांतिकारी बदलाव को लच्छित करता है तथा शिक्षा में सुधार हेतु जिला स्तर एक विकेन्द्रित करते हुए आथोरिटी के गठन का प्रस्ताव करता है *(भादू : 2006 : 19-20)*।

**राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) :** शिक्षा से यह उम्मीद की जाती है कि वह अतीत, वर्तमान और भविष्य के बीच के अंतराल को दूर करेगी। शिक्षा के माध्यम से व्याप्त असमानताओं को दूर किया जा सकता है तथा साथ ही साथ वह सामाजिक मूल्यों के विकास में सहायक होती है *(दूबे : 2006 : 10)*। जिस प्रकार से शिक्षा सामाजिक सुधार एवं विकास का माध्यम बनती है, ठीक उसी प्रकार समाज भी शिक्षा में भागीदारी के द्वारा शैक्षिक उन्ययन का आधार बनता है। शिक्षा के विकास में समुदाय की भूमिका को भी विशेष महत्व दिया गया है तथा माना गया है कि शिक्षा के विकास में समुदाय को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए *(लाल : 2012 : 641, 44)*।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 भी शिक्षा के व्यवस्थापन में शासकीय प्रयासों के अतिरिक्त समुदाय को सम्मलित करने की बात करता है। आयोग निम्न सिद्धांतों की अनुशंसा करता है:

- शिक्षा का विकेन्द्रीकरण तथा स्वायत्त बनाना।
- लोक भागीदारी को प्रधानता तथा गैर-सरकारी एजेंसियों (एन.जी.ओ.) का जुड़ाव।
- प्रदत्त उद्देश्यों एवं मानदण्डों के सम्बन्ध में जबावदेही के सिद्धांत की स्थापना *(अध्याय-10.1)*।

इसके अतिरिक्त आयोग द्वारा इस बात की संस्तुति की गयी कि शिक्षा के विकास में गैर-सरकारी तथा स्वैच्छिक प्रयासों को, जिनमें समाजसेवी सक्रिय समुदाय भी शामिल है, प्रोत्साहन दिया जायेगा एवं वित्तीय सहायता भी प्रदान की जायेगी (10.9)। आयोग द्वारा यही भी प्रस्तावित है कि साधन जुटाने के लिए विभिन्न तरीकों से जैसे- चंदा इक्ट्ठा करना, भवनों इत्यादि की मरम्मत में स्थानीय लोगों का सहयोग लेना इत्यादि द्वारा साधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने का प्रयास किया जायेगा *(11.2)*।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षा में सामुदायिक भागीदारी के सम्बन्ध में जो सुझाव या संस्तुतियाँ की गयी है उनमें जो कुछ महत्वपूर्ण बाते हैं वे निम्न हैं।

- आयोग के माध्यम से पहली बार गैर-सरकारी संस्थाओं को विद्यालय एवं समुदाय के साथ संयोजित करने का प्रयास किया गया, वह भी समुदाय के घटक के रूप में।
- एक तरफ जहाँ समुदाय से संसाधनों के विकास में सहयोग की उम्मीद की गयी वहीं दूसरी तरफ गैर-सरकारी संगठनों को सरकारी सहायता के माध्यम से विद्यालयों के अन्दर प्रवेशित किया गया।
- विद्यालयों में गैर सरकारी संगठनों की भागीदारी, उन्हें शासकीय मदद् को तो स्पष्ट किया गया है, किन्तु उनके द्वारा किये जाने वाले कार्यों के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट दिशानिर्देश प्राप्त होते नहीं दिखाई देता है।

शिक्षा में सामुदायिक भागीदारी के सम्बन्ध में राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 में कहा गया है कि, समाज की जरूरतों एवं समस्याओं के साथ तालमेल जरूरी हो गया है। शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में जो सबसे महत्वपूर्ण बात उभरती है कि शिक्षा व्यवस्था में आम लोगों की भागीदारी को बढ़ाया जाय *(चांद किरण : 2013 : 96)*। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 यह भी मानती है कि शिक्षा के प्रबंधन हेतु महिलाओं, गैर सरकारी संगठनों एवं समाज के सभी वर्गों का सहयोग प्राप्त किया जाय तथा संसाधनों में वृद्धि को बढ़ाने के लिए दान, उपहार इत्यादि को जहाँ तक हो सके सम्भव बनाया जाय *(गुप्ता एवं गुप्ता: 2013 : 182)*।

इस प्रकार शैक्षिक विकास हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 ने समुदाय एवं गैर सरकारी संगठनों के सहयोग को महत्वपूर्ण मानते हुए उनके भागीदारी पर बल दिया है।

**पुनरीक्षा समिति (1990) :** राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 की संभावनाओं को जाँच पड़ताल के लिए पुनरीक्षा समिति का गठन किया गया था जिसका शीर्षक ''प्रबुद्ध और मानवीय समाज की ओर'' था, जिसमें शिक्षा को मानव एवं समाज के विकास की बुनियादी आवश्यकता मानते हुए इसे एक मानव अधिकार के रूप में देखा है *(चांद किरण : 2013 : 125)*। नामांकन व स्थायीत्व के सर्वीकरण तथा शैक्षिक गुणवत्ता को बढ़ाने तथा संसाधनों की उपलब्धता बढ़ाने के लिए स्कूल व समुदाय के बीच के संबंध तथा शैक्षिक आयोजन व प्रबंधन का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए *(गुप्ता एवं गुप्ता: 2013 : 206)*।

**जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (1993-94) :** जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम 1994 ई. में प्रारम्भ किया गया गया था। यह कार्यक्रम सम्पूर्ण भारत के 18 राज्यों एवं

271 जिलों में संचालित हुआ। यह कार्यक्रम विश्व बैंक के उस संरचनात्मक संयोजन का भाग है जो 1991 ई. में प्रारम्भ किया गया था *(बाबू : 2005)*। जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम केंद्र सरकार एवं राज्य सरकारों के सहयोग से संचालित किया जाने वाला ऐसा कार्यक्रम था जिसमें 85 प्रतिशत राशि केंद्र सरकार एवं 15 प्रतिशत राशि का वहन राज्य सरकारों द्वारा किया गया। जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम अंतर्राष्ट्रीय एजेंसी विश्व बैंक द्वारा प्रायोजित था। जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम की योजना में विश्व बैंक की मामूली भागीदारी एवं असीमित हस्तक्षेपों के बीच समुदाय और गैर सरकारी संस्थाओं को शिक्षा के विकास हेतु विकेन्द्रित ढांचे को मजबूती जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के माध्यम से किया गया *(सद्गोपाल : 2008 : 06)*। जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम में समुदाय की भागीदारी के साथ-साथ गैर सरकारी संस्थाओं को भी भागीदारी हेतु पर्याप्त बल मिला। जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम में भी 1986 की शिक्षा नीति के सामुदायिक भागीदारी के संप्रत्यय में स्वैच्छिक एवं गैर सरकारी संगठनों की भागीदारी को यथावत न सिर्फ बनाये रखा गया बल्कि उन्हें प्रोत्साहन भी प्रदान किया गया। परिणामस्वरूप समुदाय का वास्तविक प्रतिनिधित्व अब स्वयंसेवी संस्थाओं एवं गैर सरकारी संगठनों ने लेना प्रारम्भ कर दिया।

**सर्वशिक्षा अभियान (2000-01) :** भारत सरकार द्वारा सन् 2001 में सर्वशिक्षा अभियान कार्यक्रम बनाया गया। इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करना था। इस कार्यक्रम को शिक्षा के व्यापक परिदृश्य में प्रस्तुत किया गया तथा शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने, सामाजिक विभेद कम करने को प्रमुख रूप से लच्छित किया गया था। शिक्षा में सामुदायिक भागीदारी सुनिश्चित करने एवं गतिशीलता को बढ़ाने के लिए 'स्कूल एजुकेशन मैनेजमेंट कमेटी' द्वारा सामुदायिक भागीदारी बढ़ाने पर बल दिया गया था *(सिंह : 2013)*। सर्व शिक्षा अभियान सामुदायिक भागीदारी के जरिए, स्कूल व्यवस्था में सुधार लाने का एक ऐतिहासिक प्रयास है *(पाल: 2018)*।

सर्वशिक्षा अभियान विकेन्द्रीकृत व्यवस्था पर जोर देता है। इसमें ग्राम शिक्षा समितियों के अलावा माता-पिता एवं अध्यापक संघों की स्थापना की सामुदायिक भागीदारी एवं भागीदारी के परिणामस्वरूप आने वाले सकारात्मक बदलावों को ध्यान में रखकर ही किया गया है *(भारत सरकार : 2010)*। इसके अतिरिक्त स्कूल एजुकेशन मैनेजमेंट कमेटी विद्यालयों में मिलने वाले अनुदान का उपयोग टी.एल.एम. एवं अन्य

विकास से संबंधित गतिविधियों में किये जाने वाले कार्यों में अपनी भागीदारी निभा सकती है *(राव : 2009 : 62-63)*।

**राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा -2005 :** स्कूल निर्देशित शिक्षा का स्थान होता है, लेकिन ज्ञान सृजन में तो निरंतरता होती रही है। अत: वह स्कूल के बाहर भी होता रहता है। विद्यालय और समुदाय जब एक साथ जुड़ते हैं तो शिक्षा का विकास समुदाय की आवश्यकताओं के अनुरूप करने में सहायता मिलती है *(एन.सी.एफ. 2005 : 99)*।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 समुदाय एवं शिक्षा के रिश्ते को विशेष महत्व प्रदान करता है। समुदायों के अनुभवों एवं ज्ञान को विद्यालयों को अपने पाठ्यक्रमों में सम्मिलित करने के सम्बन्ध में समुदाय के निकटस्थ सम्पर्क में रहना चाहिए (अश्विनी: 2009)। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 शैक्षिक विकास में समुदाय की प्रभावी भूमिका की वकालत करता है साथ ही साथ समुदाय के रूप में गैर सरकारी संगठनों को भी सम्मिलित करता है। पाठ्यचर्या में यह माना गया है कि शैक्षिक विकास में गैरसरकारी संगठनों की भूमिका पाठ्यचर्या, शिक्षण प्रशिक्षण एवं पाठयपुस्तकों के साथ ही साथ समुदाय में प्रचार-प्रसार में रही है, इसलिए पाठ्यचर्या विकास, प्रशिक्षण एवं प्रचार-प्रसार में उन संगठनों का सहयोग महत्वपूर्ण हो जाता है। अत: गैर-सरकारी संगठनों का सहयोग शैक्षिक विकास में आवश्यक हो जाता है। *(एन.सी.एफ.: 2005: 136)*

आजादी के बाद प्रशासन एवं शासन सम्बन्धी समस्याओं के साथ जनसमुदाय के भागीदारी की आकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता महसूस की गयी *(मैथ्यू : 2003 : 109)*। संविधान के 73वें संशोधन द्वारा त्रिस्तरीय पंचायती राज प्रणाली ग्राम, जिला एवं तालुका स्तर पर स्थापित की गई जिससे चयनित निकाय जनता को सामूहिक हित के बारे में सोचने, निर्णय करने और कार्य करने में उनके योगदान को सार्थक बनाया जा सके। 73वें संविधान संशोधन द्वारा 29 विषयों की पहचान की गयी तथा उन्हें स्थानीय निकायों को सौंपा गया *(एन.सी.एफ. 2005 : 118)*, इन विषयों में प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा भी सम्मिलित थी। इस प्रकार राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा में भी शिक्षा में सामुदायिक भागीदारी के बढ़ाने पर जोर दिया गया है तथा सामुदायिक ज्ञान एवं विद्यालयी ज्ञान को जोड़कर समुदाय एवं शिक्षा को एक-दूसरे के पूरक बनाने पर विशेष बल दिया गया है।

**नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 :** सभी बच्चों को शिक्षित करने हेतु वर्ष 2000 में डकार, सेनेगल में विश्व शिक्षा फोरम में 164 देशों ने सभी के लिए शिक्षा हेतु सामूहिक वचनबद्धताओं का पालन पर सहमति जाहिर की और 2015 तक 6 व्यापक शिक्षा लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए महत्वाकांक्षी एजेंडे का शुभारंभ किया। 2000 से विश्वभर में जबरदस्त प्रगति हुई, फिर भी हम अपने लक्ष्य तक अभी भी नहीं पहुँच पायें हैं। विश्व में अभी भी 5.80 करोड़ बच्चें ऐसे हैं जो विद्यालयों से दूर हैं तथा 10 करोड़ बच्चें ऐसे हैं जो नामांकित तो हुए किन्तु प्राथमिक शिक्षा पूर्ण नहीं कर पाते है *(यूनेस्को : 2015 : 03)*।

शिक्षा के सार्वभौमीकरण के प्रयासों के परिप्रेक्ष्य में भारत सरकार ने 6–14 वर्ष तक सभी बच्चों को अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा उपलब्ध कराने हेतु 'नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009' का क्रियान्वयन किया। साथ ही साथ शैक्षिक उन्नयन हेतु समुदाय की भागीदारी के महत्व को स्वीकार किया तथा सामुदायिक भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु 'विद्यालय प्रबंधन समिति' के गठन का प्रस्ताव दिया *(आर.टी.ई. 2009 : धारा 21)*।

अधिनियम के अन्तर्गत सामुदायिक भागीदारी के सम्बन्ध में बताया गया है कि स्कूलों का प्रबंधन स्थानीय स्व–शासन संस्थाओं और जनभागीदारी के माध्यम से किया जायेगा। क्योंकि विद्यालय प्रबंधन समिति द्वारा स्थानीय ग्रामीण शिक्षा की समस्याओं को और बेहतर ढंग से उठाया जा सकता है *(अश्विनी : 2010 : 28)*। अधिनियम में निहित प्रावधानों को लागू करना शासन तंत्र के समक्ष एक बड़ी चुनौती है। भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक संरचनाओं की विभिन्नता पायी जाती है। जहाँ किसी प्रावधान के संचालन से समस्याओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के क्रियान्वयन में आने वाली समस्याओं को विद्यालय प्रबंधन समिति के माध्यम से समाधान करने में सहायता मिलेगी *(धनकड़ : 2009 : 07)*।

इस प्रकार विभिन्न लेख एवं अध्ययन इस ओर इंगित करते हैं कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 धारा 21 में वर्णित विद्यालय प्रबंधन समिति के माध्यम से सामुदायिक भागीदारी द्वारा विकास एवं उन्नयन की कल्पना करता है।

## समुदाय सहभागिता एवं शिक्षा नीति : एक अन्तर्सम्बन्धात्मक परिचर्चा

प्रस्तुत लेख जिसमें शिक्षा एवं समुदाय के अन्योन्याश्रित अंतर्संबंध को विभिन्न प्रमुख शिक्षाई नीतियों/कार्यक्रमों के परिप्रेक्ष्य में रेखांकित किया गया है।

शिक्षा के मौलिक अधिकार अधिनियम (2009) ने समुदाय के महत्व एवं भूमिका की अपरिहार्यता को स्वीकारते हुए विद्यालय प्रबंधन समिति (वस्तुतः यह समुदाय का प्रतिनिधित्व करती है) के माध्यम से समुदाय एवं विद्यालय के ऐतिहासिक उद्विकासीय संबंध को शिक्षायी गुणवत्ता, बच्चों की भागीदारी एवं सामाजिक हस्तक्षेप के सन्दर्भ में उत्तरदायी बनाते हुए वैधानिकृत एवं नीतिगत किया है।

60 के दशक में शिक्षा के सन्दर्भ में व्यापक हस्तक्षेप करते हुए डां डी.सी. कोठारी आयोग (1964-66) ने अपनी मूल प्रस्तावना में शिक्षा के माध्यम से राजनैतिक लोकतांत्रिकीकरण के लिए *'विद्यालय'* को एक महत्वपूर्ण घटक स्वीकार किया, जिसमें समुदाय की समतामूलक भागीदारी एक अनिवार्य शर्त थी।

कोठारी आयोग के समक्ष विद्यालय का अस्तित्व मात्र एक प्रशासनिक अथवा शैक्षिक इकाई के रूप में न होकर एक *''उद्विकासीय जैविक समुदाय''* के रूप में स्वीकार किया गया जिसे मूर्त रूप में 'पड़ोसी विद्यालय' के रूप में व्याख्यायित किया गया।

समुदाय-आधारित एवं निर्देशित विद्यालय की स्थापना से ही लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना सुनिश्चित की जा सकती है, जिसे व्यापक अर्थों एवं संदर्भों *''समान स्कूल प्रणाली''* के रूप में समझा जा सकता है। *'समान स्कूल प्रणाली'* की यह चेतना समुदाय की सविमुक्त भागीदारी एवं उसके सकारात्मक हस्तक्षेप से ही संभव हो सकती है।

कोठारी आयोग ने जहाँ एक ओर विद्यालय के प्रबंधन, शिक्षण एवं आधारभूत संरचनाओं के विकास के लिए समुदाय की भागीदारी एवं उसकी प्रकृति को प्रत्यक्ष रूप में अंगीकृत एवं स्वीकृत किया था, उसी के बरक्स 1986 की शिक्षा नीति ने पाठशाला एवं समुदाय को दो भिन्न स्थिति एवं संदर्भ मानते हुए इनकी मध्यस्थता के लिए तीसरे पक्ष के रूप में गैर सरकारी प्रयास/उपक्रम/संगठन को विकल्प के रूप में अपरिहार्य बना दिया।

20 वीं सदी के उत्तरार्ध में किये गये इस उपक्रम ने भारतीय विद्यालयों की प्रकृति, संरचना, एवं प्रक्रिया को एक नये उदारवादी परिप्रेक्ष्य में परिभाषित एवं व्याख्यायित किया जिसमें पाठशाला एवं समुदाय के बीच *'द्वंद्वात्मक संबंध'* स्थापित हुआ।

इस *द्वंद्वात्मक* संबंध ने भारतीय विद्यालयों एवं समुदाय के बीच एक गहरे अविश्वास को जन्म दिया जिसमें विद्यालय के सभी घटक जैसे विद्यार्थी, शिक्षक, पाठ्यक्रम, अधोसंरचना, सहभागी क्रियाएँ आदि *'सरकारीकरण'* की प्रक्रिया से निर्गत होने लगीं।

*'सरकारीकरण'* की इस प्रक्रिया ने विद्यालयों में शैक्षिक गुणवत्ता के विमर्श को लगातार हाशिये पर ले जाते हुए शिक्षा में एक बहुपरती, भेदभावमूलक एवं बहुगुणवत्तापूर्ण समानान्तर व्यवस्था को वैधानिकृत कर दिया जिसे परवर्ती वर्षों में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम, सर्वशिक्षा अभियान, सर्वसुलभीकरण आदि शिक्षायी मुहिमों के अंतर्गत विद्यालय एवं समुदाय के अंतर्संबंध के तहत समझा जा सकता है, जहाँ समुदाय की भूमिका महज एक *'प्रतिनिधित्व मूकदर्शक'* तक सीमित कर दी गयी।

विद्यालय एवं समुदाय के बीच परस्पर संवाद, विश्वसनीयता एवं संपूरकता की स्थापना के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप–2005 ने समुदाय के अनुभवों तथा ज्ञान को विद्यालयी पाठ्यक्रमों एवं प्रक्रियाओं में अनिवार्य तत्व मानते हुए बच्चों में *'आलोचनात्मक चिंतन'* के लिए एक बुनियादी, नैसर्गिक एवं अपरिहार्य स्थिति के रूप में स्वीकार किया।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप–2005 ने जहाँ एक ओर समुदाय को एक समृद्ध, बहुल एवं लोकतांत्रिक *'ज्ञान के संसाधन'* के रूप में रेखांकित करते हुए एक *'रचनात्मक अभिकरण'* की संज्ञा प्रदान की, वहीं दूसरी ओर यह भी स्वीकार किया कि समुदाय आधारित विद्यालय ही सही अर्थों में सामाजिक परिवर्तन के अभिकरण के रूप में एक सशक्त भूमिका का निर्वहन कर सकता है।

उपरोक्त दोनों मान्यताएँ (जो कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप–2005 से निर्गत हैं) विद्यालय एवं समुदाय के आपसी संबंध को बदलते संदर्भों एवं आयामों में पुन:व्याख्यायित करने की मांग करती है जिसमें *'विद्यालय को समुदाय केन्द्रित'* तथा *'समुदाय को विद्यालय केन्द्रित'* होना एक अपरिहार्य स्थिति है। जहाँ समुदाय की शैक्षिक आवश्यकता एवं आकांक्षा के बरक्स विद्यालय का लोकतांत्रिक दृष्टिकोण एवं शैक्षिक नेतृत्व एक दूसरे पर अतिव्यापित होते हुए संवैधानिक प्रावधानों एवं मूल्यों के संवर्धन के लिए समतामूलक एवं भागीदारीमूलक *'समीक्षाई चेतना'* के सृजन के लिए जमीन तैयार करते हैं। इन स्थितियों में ही विद्यालय एवं समुदाय के संबंध को नवाचारी एवं रचनाधर्मी बनाया जा सकता है।

## *संदर्भ*

उमरिया, मित्सुए (1999), कम्युनिटी पार्टिसिपेशन इन एजुकेशन : व्हाट डू वी नो? एच.डी.एन. ई.डी. वर्ल्ड बैंक।

भादू, राजाराम (2006), 'सामुदायिक सहभागिता और शिक्षा', शिक्षा विमर्श, सितम्बर-अक्टूबर 2006।

बर्न्टसेन, मैक्सिन (2017). 'सभी के लिए अंग्रेजी : क्या यह वांछनीय और संभव है?', शिक्षा विमर्श, वर्ष 19, अंक 04, जुलाई-अगस्त 2017।

आरिफ अब्रिषम, (2010), 'कम्युनिटी पार्टिसिपेशन फॉर एजुकेशनल प्लानिंग एंड डेवलपमेंट', नेचर एंड साइंस 2010, 8(9)।

सेन एवं द्रीज (2009), 'भारत में विकास की दशाएं' राजपाल एंड संस, नई दिल्ली।

*शर्मा, संजय (2010), 'शिक्षा, गुणवत्ता एवं विचारधारा' परिप्रेक्ष्य, वर्ष 17, अंक 3, दिसम्बर 2010 पृष्ठ- 02*।

भारतीय शिक्षा आयोग (1964-66), 'शिक्षा एवं राष्ट्रीय विकास', शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली।

धारा 22, नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009, मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली।

कुशवाहा, डा. मंजू (2017), 'सतना जिले के सोहावल विकासखंड में प्रारम्भिक शिक्षा के विकास में शाला प्रबंधन समिति का शैक्षिक विकास का एक अध्ययन', इंटरनेशनल जर्नल अ्रफ मल्टीडीसीप्लीनरी एजुकेशन एंड रिसर्च, वॉल्यूम 2 इशू 4 जुलाई-2017।

कुमार, कृष्ण एवं सारंगपाणी, पद्मा (2006), 'गुणवत्ता की बहस का इतिहास', शिक्षा विमर्श, मार्च-अप्रैल 2006

वैश्विक शिक्षा निगरानी रिपोर्ट का सार (2017-18), यूनेस्को, पेरिस 07 एमपी फ्रांस।

भादू, राजा राम (2015), 'राष्ट्रीय नीति दस्तावेजों में मूल्यांकन', शिक्षा विमर्श, मई-जून, 2015

कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन, योजना आयोग की सर्वशिक्षा अभियान पर मूल्यांकन रिपोर्ट, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2010

राव, वसंत श्रीनिवास (2009), लैक ऑफ कम्युनिटी पार्टिसिपेशन इन द सर्वशिक्षा अभियान : ए केस स्टडी, इकोनोमिक्स एण्ड पोलीटिक विकली, फरवरी 21, 2009, वॉल्यूम XLIV, नं.8

ई.एफ.ए. वैश्विक शिक्षा निगरानी रिपोर्ट (2015), 'सभी के लिए शिक्षा 2000-2015 : उपलब्धियाँ एवं चुनौतियाँ', यूनेस्को 7, प्लेस डि फोन्टेने, 75352 पैरिस 07 एसपी, फ्रांस

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 24, अंक 3, दिसंबर 2017

*शोध टिप्पणी/संवाद*

# राष्ट्रीय एकता के विकास में शिक्षा की भूमिका

**चित्ररेखा गौड़***

## भूमिका

*राष्ट्र की एकता ही है इसका आधार, न थोपो उस पर साम्प्रदायिक विचार,*
*क्यूँ करते हो भेद ईश्वर के बन्दों में? हर मजहब सिखाता है प्रेम की बातें सबमें,*
*क्यूँ करते हो वैचारिक लड़ाई? बनता है यह भारत माँ के लिए दुख:दाई,*
*एक भूमि का टुकड़ा नही है यह मेरा देश, मेरी माँ का है यह सुन्दर परिवेश*
*इसके उद्धार में ही है आलोकिक प्रकाश, सबके साथ में ही है सबका विकास,*
*एकता ही है अन्त दु:खों का, एकता में ही है कल्याण अपनों का।*

भारत में सन् 1857 ई. के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम ने भारतवासियों के मन में राष्ट्रीयता की भावना का तीव्र गति से विकास किया था। अंग्रेजी शासकों ने भारत में राष्ट्रीयता के अस्तित्व को पूर्ण रूप से मानने से इन्कार कर दिया था। सन् 1883 में जे.आर. सीले ने भारत को केवल एक भौगोलिक इकाई की संज्ञा प्रदान की जिसमें राष्ट्रीय एकता की कोई भावना नहीं थी। सन् 1884 में जॉन स्ट्रेची ने कैम्ब्रिज में छात्रों को सम्बोधित करते हुए कहा था कि– ''भारत के सम्बन्ध में भारतवासियों को सबसे पहली तथा प्रमुख बात जानने योग्य यह है कि भारत न कभी एक है, न कभी एक था और न ही कभी यह एक संयुक्त राष्ट्र बन सकता है।'' लेकिन 19वीं शताब्दी के अन्तिम दशक तथा 20वीं शताब्दी की कुछ प्रमुख घटनाओं ने पूर्ण रूप से यह स्पष्ट कर दिया कि भारत में राष्ट्रवाद का उदय हो चुका है और 1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना ने भारतवासियों के मन में राष्ट्रीय चेतना की भावना को और अधिक मजबूत कर दिया।

हिन्दी के कहानीकार सुदर्शन जी लिखते हैं कि– ''ओंस की बूंद से चिड़िया भी नही भीगती किन्तु मेंह से हाथी भी भीग जाता है।'' अर्थात् मेंह बहुत कुछ कर सकता है। राष्ट्रीय

*विभागाध्यक्ष (बी.एड.) अक्षय एकेडमी बी.एड. कालेज, इन्दौर, मध्य प्रदेश

एकता एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया व एक भावना है जो किसी राष्ट्र अथवा देश के लोगों में भाईचारा या राष्ट्र के प्रति प्रेम व अपनत्व का भाव प्रदर्शित करती है। राष्ट्रीय एकता राष्ट्र को सशक्त व संगठित बनाती है यही वह भावना है। जो विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, जाति, वेश-भूषा, सभ्यता एवं संस्कृति के लोगों को एक सूत्र में पिरोए रखती है।

## राष्ट्रीय एकता

राष्ट्रीय एकता कोई कल्पना की वस्तु नही है और न ही यह अतीत से मिला हुआ कोई उपहार है। यह जीवन के सभी क्षेत्रों में राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक-अथक प्रयासों द्वारा लाई गई है। नेहरू जी के ये विचार सार्थक है कि ''वास्तव में राष्ट्रीय समाकलन के लिए वैयक्तिक समाकलन पूर्वापेक्षित है'' अर्थात् सुसंगठित व्यक्तित्व का विकास ताकि व्यक्ति दूसरों के भावों को अच्छी तरह समझ सकें, तार्किक चिन्तन कर सकें, सही निर्णय ले सकें और प्रतिकूल परिस्थितियों में सन्तुलन कायम रख सके। राष्ट्रीय एकता के लिए सामाजिक, आर्थिक, भाषायी, सांस्कृतिक, धार्मिक और संवेगात्मक समाकलन आवश्यक है। सामाजिक समाकलन के लिए सहिष्णुता व सहयोग की भावना, प्रजातन्त्र में आस्था, मानवतावादी होना, स्वार्थहीनता, सामाजिक न्याय के प्रति प्रेम, व समायोजनात्मक दृष्टिकोण परमावश्यक है। जातिवाद तथा धार्मिक कट्टरता को दूर किये बिना इस समाकलन को पूर्णत: स्थापित नही किया जा सकता है। आर्थिक समाकलन वर्ग-भेदों तथा आर्थिक असमानताओं पर बल देता है व लोगों के जीवन स्तर को सुधारने में सहायता करता है। भाषायी समाकलन के लिए भाषाओं के माध्यम से अन्तर्क्रिया करना निहित है और सांस्कृतिक समाकलन के लिए भिन्न-भिन्न क्षेत्रीय व भाषायी मानव समूहों की संस्कृति अच्छी बातों का चयन व उनका पारस्परिक स्वांगीकरण संवर्धन आवश्यक है।

## राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता

वर्तमान समय में राष्ट्रीय एकता नितान्त आवश्यक है। भारत में विविधताओं के कारण अपनी-अपनी ढपली, अपनी-अपनी राग सुनाई पड़ता है,' अर्थात् इस समय भारत एक ऐसे स्थान पर आकर खड़ा हो गया है, जहाँ व्यक्ति के लिए राष्ट्र से बढ़कर उसका व्यक्तिगत स्वार्थ हो गया है और देश की सुख-शान्ति तथा वैभव का स्थान साम्प्रदायिकता, जातियता एवं क्षेत्रीयता ने अपना लिया है, जिसके परिणामस्वरूप देश की सुख-शान्ति खतरे में पड़ गई है। वर्तमान युग आज द्रुत परिवर्तन का युग है। शोधों के परिणाम स्वरूप आज मनुष्य चाँद पर पहुँच गया है और गगन मण्डल के अनेक रहस्यों से परिचित होने के कारण प्राचीन मान्यताएँ आज ढह रही हैं।

यदि देश की यही स्थिति रही तो वह दिन दूर नही जब सम्पूर्ण भारत देश के आन्तरिक कलह और विघटनकारी प्रवृतियों के कारण विदेशियों का हस्तक्षेप होने लगेगा और देश भाषा, सम्प्रदाय, वर्ग के आधार पर छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो जाएगा। हम यदि अपने ही इतिहास के पन्नों को पलट कर देखें तो यही लगता है कि जब-जब हमारी राष्ट्रीय एकता कमजोर पड़ी है, तब-तब वाह्य शक्तियों ने उसका लाभ उठाया है और हमें उनके अधीन रहना पड़ा है। अत: राष्ट्र की एकता, अखण्डता व सार्वभौमिकता बनाए रखने के लिए राष्ट्रीय एकता का होना परमावश्यक है। भारत जैसे विकासशील देश के लिए जो वर्षों तक दासत्व का शिकार रहा वहाँ राष्ट्रीय एकता की सम्पूर्ण कड़ी का मजबूत होना अति आवश्यक है, जिससे भविष्य में उनकी पुनरावृति न हो सके।

## राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधाएँ

### 1. जातिवाद

भारत में जातिवाद की जड़ें काफी गहरी है जो राष्ट्रीय एकता के लिए अभिशाप है। यहाँ अनेक जातियों के लोग निवास करते हैं जो अपनी जाति के हितों और स्वार्थों को सर्वोपरि मानते हैं और उन पर रक्षा करने के लिए देश-हित को भूल जाते हैं। जी.एस. घुरे. ने कहा है कि- ''यह जाति प्रेम की भावना ही है, जो अन्य जातियों में कटुता उत्पन्न करती है और राष्ट्रीय चेतना के विकास के लिए अनुपयुक्त वातावरण तैयार करती है।'' डॉ. जाकिर हुसैन ने जातिवाद की आलोचना करते हुए कहा था कि- ''जातिवाद का अन्त कभी का हो गया होता परन्तु कुछ स्वार्थी राजनीतिक इसकी आड़ में अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं।'' इसका प्रयोग वे निर्वाचन मत प्रणाली को गन्दा करके जातिवाद को सहारा दे रहे हैं। जहाँ जाटों का बहुमत होता है वहाँ जाट को खड़ा किया जाता है, वैश्यों के बहुमत वाले देश में वैश्य को और अन्य जातियों के क्षेत्रों में सम्बन्धित जाति धर्म के व्यक्ति को ही खड़ा किया जाता है। नि:सन्देह इससे निर्वाचन में तो सफलता मिल जाती है, परन्तु जातिवाद का विष फैल जाता है।

वर्तमान समय में संसद, विधानसभा, न्यायपालिका, ग्राम पंचायत, छात्रसंघ, परिषद् आदि के चुनावों में जातिवाद का बहुत ही गिरा हुआ रूप दिखाई देता है। आज का मनुष्य अपनी जाति की श्रेष्ठता व निकृष्टता के प्रति संवेदनशील है। आज हमें ऐसी परम्पराओं को, जो जातिवाद को बढ़ावा देती हो को, नष्ट करना होगा।

### 2. प्रदेशवाद

प्रादेशिक उत्तमता की भावना प्रदेशवाद को जन्म देती है जो राष्ट्रीय एकता में बाधक है। एक प्रदेश का व्यक्ति दूसरे प्रदेश के व्यक्तियों से सम्पर्क बढ़ाने में रूचि नही लेता है। विभिन्न विश्वविद्यालयों ने राज्य/क्षेत्र विशेष में आवास का प्रतिबन्ध लगाकर प्रदेशवाद की भावना को और बढ़ा दिया है। लोगों को अपने पंजाबी, मद्रासी, तमिल, बंगाली, बिहारी आदि होने पर गर्व है परन्तु स्वयं को भारतीय कहलाने में उन्हें संकोच होता है।

### 3. साम्प्रदायिकता

वर्तमान समय में भारत में राजनीतिक साम्प्रदायिकता का विष बहुत तेजी से फैल रहा है। दल-बदल की राजनीति, राजनीतिक भ्रष्टाचार, सता हथियाने से सम्बन्धित राजनीतिक गतिविधियाँ, विरोधी लोकप्रिय नेताओं की छवि धूमिल करने के सुनियोजित प्रयत्न आदि राजनीतिक साम्प्रदायिकता के द्योतक है, जो धार्मिक साम्प्रदायिकता से भी अधिक घातक हैं। हमारे देश मे हिन्दू मुसलमान, ईसाई, पारसी, सिक्ख, जैन आदि विभिन्न धर्म एवं सम्प्रदाय के लोग निवास करते हैं। इन धर्मों एवं सम्प्रदाय के लोग अपने को श्रेष्ठ समझने के कारण दूसरे धर्म एवं सम्प्रदाय को निम्न समझते हुए उनकी अवहेलना करते हैं जिसके परिणाम-स्वरूप समाज के बीच घृणा, द्वेष, कटुता एवं शत्रुता की भावना जागृत हो जाती है।

### 4. भाषावाद

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 में हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार किया गया है लेकिन कुछ भारतीय सच्चे मन से इसे स्वीकार करने को तैयार नही हैं। मैकाले ने कहा था- ''भारतीय नागरिक केवल रक्त और रंग में ही भारतीय हो, परन्तु उनकी रूचियाँ, सूझ-बूझ, नैतिकता तथा बुद्धि-सभी कुछ अंग्रेजी ढंग का हो जाना चाहिए।'' नि:सन्देह किसी संस्कृति का विकास उसकी भाषा करती है क्योंकि उसका स्वरूप उस भाषा में वर्णित होता है। भारत की अधिकांश जनता अंग्रेजी नही जानती है, ऐसी दशा में अंग्रेजी व्यवहारिक राष्ट्रभाषा नही बन सकती है। आज ऐसा लगता है कि लोगों ने यह भुला दिया है कि राष्ट्रीय समाकलन के लिए सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग आवश्यक है।

### 5. आर्थिक असमानता

आज भी 60 प्रतिशत से अधिक लोगों की अनिवार्य जैविक आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं हो पाती हैं। उन्हें एक समय का भोजन भी नहीं मिल पाता। दूरदर्शन, रेडियों, मकान,

शिक्षा दवा आदि तो उनके लिए विलासिता की चीजें हैं। आर्थिक असमानताएँ बढ़ती जा रही हैं। गरीबी की रेखा से नीचे जी रहे अधिसंख्य लोगों का राज्य में विश्वास कम होता जा रहा है। अक्सर पोषित जन शोषणकर्ताओं के विरुद्ध आन्दोलन करते हैं व भावात्मक विघटन का कारण बन जाते हैं। देश में आर्थिक असमानता के कारण अमीर और गरीब के बीच एक बहुत बड़ी खाई बनी हुई है जिसके कारण इन वर्गों के बीच आक्रोश एवं संघर्ष की स्थिति पैंदा हो जाती है।

### 6. देशभक्ति की भावना का अभाव

स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने देशभक्ति के जिस बीज को बोया था उससे उत्पन्न पौधा आज मुरझा गया है। धनार्जन की बलवती इच्छा के कारण हमें मिलावट करने व जमाखोरी करने में संकोच नहीं होता और निजी स्वार्थों के पूर्ति के लिए राष्ट्रीय हित की आहुति दे देते हैं। आज देशवासियों के सामने कोई सार्थक आदर्श नही है, दिन-प्रतिदिन हमारे वैयक्तिक व सामाजिक जीवन में नैतिकता की कमी होती जा रही है।

### 7. भारतीय संस्कृति के प्रति अनुपयुक्त दृष्टिकोण

आज वर्तमान समय में बहुत ही कम शिक्षित भारतीय भारत की कला, प्रकृति, परम्पराओं, प्राचीन इतिहास, संगीत, दर्शन, साहित्य आदि से सुपरिचित है, अर्थात भारतीय संस्कृति में हमारी अनास्था बढ़ती जा रही है और हम भौतिकता की मृग-मरीचिका की ओर दौड़ते जा रहे हैं।

### 8. अशिक्षा एवं अंधविश्वास

सामाजिक रूढ़िवादिता एवं अंधविश्वास के कारण कई तरह के सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक कटुता जैसी समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। अशिक्षा एवं अंधविश्वास के कारण ही भ्रष्टाचार, दूषित राजनीति, धार्मिक उन्माद, साम्प्रदायिकता एवं कट्टरवादिता का जन्म होता है जो राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा है।

### 9. बेरोजगारी की समस्या

शिक्षा की दोषपूर्ण व्यवस्था के कारण आज शिक्षित बेरोजगारी की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। वे रोजगार तलाशते-तलाशते इस कदर हताश हो चुके होते हैं कि वे आतंकवादी, नक्सलवादी एवं अन्य विघटनकारी संगठनों में शामिल हो जाते हैं। वे हड़ताल, तोड़-फोड़, अनैतिक एवं असामाजिक कार्यों को नि:सन्देह रूप से अंजाम देते हैं।

### 10. दोषपूर्ण शिक्षा व्यवस्था

भारत का प्रत्येक राज्य अपनी आवश्यकताओं एवं संसाधनों के हिसाब से शिक्षा की व्यवस्था करता है, जिसके परिणामस्वरूप दो प्रकार की बुराइयाँ उत्पन्न होती है:

1. बालकों में राष्ट्रीय भावना की अपेक्षा अपने राज्य तक सीमित हो जाती है।
2. विभिन्न राज्यों के शिक्षा पाठ्यक्रम और शिक्षा के वेतनमानों में विभिन्नताएँ पाई जाती हैं। इससे एक दूसरे राज्य के शिक्षक एवं बालक वर्ग में भेदभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

### 11. राष्ट्रीय चरित्र का अभाव

समाज के हर क्षेत्र में राष्ट्रीय चरित्र का अभाव होने के कारण भ्रष्टाचार एवं नैतिक पतन ने देश को कमजोर कर दिया, और लोग जनहित की अपेक्षा अपने स्वार्थ में लिप्त हो गये हैं। चारित्रिक पतन के कारण व्यक्ति परहित की बात नहीं सोचते, और न ही एक-दूसरे पर विश्वास करते हैं। राष्ट्रीय हित को गौण समझने के कारण राष्ट्रीय एकता को बहुत बड़ा आघात हुआ है।

### 12. भ्रष्टाचार

वर्तमान समय में हमारे देश में राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था में भ्रष्टाचार का ही बोलबाला है। खाने से लेकर दवाई तक सभी वस्तुओं में धड़ल्ले से मिलावट की जा रही है, और तो और सुरक्षा की वस्तुओं में भी कमीशनखोरी के कारण घटिया माल की आपूर्ति की जाती है। वास्तव में आज भ्रष्टाचार इतना अधिक बढ़ गया है कि कोई भी कार्य बिना रिश्वत के हो ही नहीं सकता। समाज में पूरी तरह से कालाबाजारी, तश्करी, सट्टा, अपहरण आदि घृणित घटनाएँ घटित होती रहती हैं।

भारत सरकार ने भावात्मक एकता समिति एवं राष्ट्रीय एकता समिति का गठन किया। भावात्मक एकता समितिं राष्ट्रीय एकता के लिए जहाँ एक ओर विभिन्न सुझाव दिये, वही दूसरी ओर यह भी स्पष्ट शब्दों में कहा कि- राष्ट्रीय एकता स्थापित करने का उत्तरदायित्व केवल सरकार पर ही नही है अपितु देश के प्रत्येक नागरिक पर है। अतएव समिति ने राष्ट्र से अपील की है, कि इस कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न कराने के लिए देश के सभी नागरिको का पूरा सहयोग करना चाहिए।

## सुझाव

### 1. भावात्मक एकता समिति के सुझाव

इस समिति के अध्यक्ष डॉ. सम्पूर्णानन्द के विचारानुसार राष्ट्रीय एकता को उत्पन्न करने के लिए शिक्षा अति महत्वपूर्ण कार्य कर सकती है। इन्होंने सुझाव दिया था कि–

अ– शिक्षा द्वारा बालकों में उचित अभिरुचियों, दृष्टिकोणों और संवेगों का विकास किया जा सकता है जिससे वे अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं को समझ सकें।

ब– इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पाठ्यक्रम में इतिहास को महत्व दिया जाएं जिसके लिए अनुभवी शिक्षकों की आवश्यकता होगी।

स– मध्यकाल का इतिहास जिसमें हिन्दू और मुसलमानों ने संस्कृतियों को मिलाने में अपना योगदान दिया है, जिसके परिणाम स्वरूप स्थापत्य, चित्रकला, साहित्य आदि के क्षेत्रों में एकता की भावना जागृति हुई है।

### 2. राष्ट्रीय एकता सम्मेलन के सुझाव

राष्ट्रीय एकता के विकास के लिए सभी जातियों, सम्प्रदायों और राज्यों में अधिक तालमेल बनाने हेतु उचित शिक्षा को महत्व देना चाहिए।

## राष्ट्रीय एकता के विकास में शिक्षा की भूमिका

शिक्षा राष्ट्रीय विकास का सशक्त साधन है। शिक्षा से न केवल व्यक्ति तथा समाज की ही उन्नति होती है अपितु यह राष्ट्रीय आर्थिक विकास, राष्ट्रीयता की भावना तथा भावनात्मक एकता स्थापित करने का भी प्रभावी साधन है। आज भारत को अनेक विघटनकारी शक्तियों का सामना करना पड़ रहा है जो भारत के लिए अत्यन्त ही दुर्भाग्य की बात है। राष्ट्रीय एकता के फलस्वरूप ही हम राष्ट्र के हित में चिन्तन कर सकते हैं। देश में एकता की स्थापना करने के उत्तरदायित्व से शिक्षा अपना मुँह नही मोड़ सकती। भावात्मक एकता समिति ने अपने प्रतिवेदन के पृष्ठ 185 पर ठीक ही कहा है कि शिक्षा को राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीयता की भावना का विकास करना है। समिति के ही शब्दों में ''राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। क्योंकि यह अनुभव किया गया कि शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्त करना ही नही है वरन् छात्र के व्यक्तित्व के सभी पक्षों का विकास करना है। इसको चाहिए कि यह छात्रों की दृष्टिकोण को विकसित करे, एकता तथा राष्ट्रीयता और त्याग एवं सहिष्णुता की भावना का विकास करे जिससे कि संकीर्ण दलगत स्वार्थों को इस विशाल देश–हित में समाहित किया जा सके।''

राष्ट्रीय व भावात्मक एकता के आदर्शों को प्राप्त करने के लिए केवल कानून का ही सहारा नही लिया जा सकता। संविधान में जिस भारत की झाँकी प्रस्तुत की गयी है उसके किसी भाग को पृथक करने के विचार एवं प्रचार की अनुमति संविधान नही देता। इस दृष्टि से भावात्मक एकता के लिए तदनुसार अभिवृति का निर्माण करना अति आवश्यक है। अर्थात् प्रत्येक राष्ट्र तभी उन्नति कर सकता है जब उसके सभी नागरिक एक संगठन के सूत्र में बंधकर परस्पर ममत्व तथा अपनत्व की भावना का विकास करते हुए राष्ट्र हित में नि:स्वार्थ भाव से कार्य करें। किन्तु अफसोस है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था भारतीय जनजीवन की आवश्यकताओं, भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम जैसे मूल्यवान गुणों का विकास करने में असफल रही है। राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास करने के लिए वैसे तो सरकारी प्रयास किए जा रहे है। जैसे–

- राष्ट्रीय एकता परिषद की समिति का गठन।
- राष्ट्रीय एकता गोष्ठी।
- उपकुलपति सम्मेलन।
- राष्ट्रीय एकता सम्मेलन।
- डा. सम्पूर्णानन्द समिति।
- राष्ट्रीय एकता परिषद।
- कोठारी आयोग का गठन आदि।

डॉ. राधाकृष्णन ने राष्ट्रीय एकता के विकास में शिक्षा की उपयोगिता बताते हुए लिखा है कि– ''राष्ट्रीय एकता को ईंट, पत्थर, आरी और हथौड़े से तैयार नही किया जा सकता है, यह तो मनुष्य के दिल और मस्तिष्क में चुपचाप उन्नत और विकसित होती है और यह प्रक्रिया केवल शिक्षा की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया धीमी हो सकती है पर यह एक स्थाई एवं दृढ़ प्रक्रिया है।

वास्तव में शिक्षा ही वह साधन है जो व्यक्तियों में स्थाई एवं पर्याप्त मात्रा में राष्ट्र प्रेम, देशभक्ति अपनत्व तथा ममत्व का विकास कर सकती है, इसके लिए निम्नलिखित कार्य किए जाने चाहिए:

- समग्र रूप से राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का विकास किया जाए।
- पाठ्यक्रमों में आवश्यक संशोधन किए जाएं। इसके लिए इतिहास, नागरिकशास्त्र, भूगोल तथा भाषा जैसे विषयों को राष्ट्रीय एकता की भावना के परिप्रेक्ष्य में पुन: लिखने की आवश्यकता है।

- पाठ्यसहगामी क्रियाएं कराई जाएं जिसमें गणतन्त्र दिवस, स्वतन्त्रता दिवस, राष्ट्रीयपर्व, महापुरूषों के जन्मदिन, धार्मिक एवं सामाजिक मेले तथा स्काउट जैसे कार्यक्रमों पर विशेष जोर दिया जाए।
- नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा धर्म निरपेक्षता के आधार पर दी जाए।
- अध्यापकों को अपने आचरण के दौरान इस भावनाा का विकास करना चाहिए।
- अन्य कार्यक्रम–धर्मनिरपेक्ष शिक्षा, प्रौढ़शिक्षा, नि:शुल्क शिक्षा, सर्वधर्म सम्भाव शिक्षा आदि की व्यवस्था की जाए।

## निष्कर्ष

अन्त में यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय एकता की भावना में देशभक्ति एवं देशप्रेम की भावना के तत्व शामिल हैं, जो देश के नागरिकों को एकता के सूत्र में बाधें रखने का प्रयास करती है। जब तक किसी राष्ट्र की एकता सशक्त है तब तक वह राष्ट्र भी सशक्त है। वाह्य शक्तियाँ इन परिस्थितियों में उसकी अखण्डता व सार्वभौमिकता पर प्रभाव नहीं डाल पाती हैं।

अत: राष्ट्र की एकता, अखण्डता व सार्वभौमिकता बनाए रखने के लिए राष्ट्रीय एकता का होना अनिवार्य है। भारत जैसे विकासशील देश के लिए जो वर्षों तक दासत्व का शिकार रहा है, वहाँ राष्ट्रीय एकता की सम्पूर्ण कड़ी का मजबूत होना अति आवश्यक है ताकि भविष्य में उसकी पुनरावृति न हो। राष्ट्रीय एकता के प्रसिद्ध संदेशवाहक राष्ट्र कवि सुब्रहण्यम को कौन नही जानता? भारत माँ के चरणों में जो शब्द–सुमन उन्होंने चढ़ाएं, उनकी सुगन्ध से पूरा देश सुगन्धित हो उठा।

तमिलनाडु प्रदेश में जन्म–शिक्षा और पूरे देश का एक एक निवासी इनकी दृष्टि का तारा बना हुआ था। दक्षिण भारतीय इस कवि की ओजपूर्ण वाणी में राष्ट्रीय–एकता का सन्देश कूट–कूट कर भरा हुआ है:

**''वैभव है हमें जब तक, अध:पतन ही होगा तब तक**
**जीवन मधुमय बना रहेगा, यदि हममें संगठन होगा,**
**लेकर सबका सबल सहारा, होगा पूर्णोत्थान हमारा,**
ऊँचा जिसका माथा रहेगा, उसमें सबका साथ रहेगा,
साथ रहेंगे, साथ चलेंगे–

अमीर खुसरो, गुरुनानक, तेग बहादुर, बादशाह जफर, मिर्जा गालिब आदि न जाने कितनी कौमी एकता के तराने करने बुलन्द करने वाली हस्तियाँ रहीं। उम्र भर जो

भाई-चारे और एकता के स्वर फिजाओं में तैराते रहे। भारत आज स्वतन्त्र है पर लोग पूरी तरह से स्वतन्त्र नही हैं। यदि 21वीं सदी के उन्मेश के समय एक ऐसा राष्ट्र देखना चाहते हैं जो राष्ट्रीय एकता के मूल्यों के प्रति तथा क्रान्तिकारी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए गतिशील प्रक्रियाओं को अपनाने के प्रति समर्पित हो, तो हमें अभी मीलों दूर जाना है और बहुत से वादे पूरे करने है। जस्टिस कृष्णा अययर इस भविष्यवाणी के साथ-साथ हमें सावधान करते हैं कि ''आप यदि इस सदी के साथ छल करेंगे तो आगे आने वाली सदी भी आप को विश्वास भंग का दोशी ठहराएगी।'' अतः इस विघटनकारी प्रक्रिया को जो इस समय चल रही है हमें उसे घातक रोग मान कर अपने खून में बसी जयहिन्द की भावना से रोकना होगा।

## *संदर्भ*

सुरेश भटनागर, डा. शिव पूजन पाण्डेयः भारत में शिक्षा का स्तर, समस्याएँ और मुद्दे, विनय रखेजा- प्रकाशन, मेरठ-2016।

श्रीमती राजकुमारी शर्मा, डा. जी.सी. शर्मा, एस.के. दूबेः भारत में शिक्षा का स्तर, समस्याएँ और मुद्दे, राधा प्रकाशन, आगरा-2015।

अलतेकर : *प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति,* मनोहर प्रकाशन, वाराणसी-1979-80।

डा. रामशकल पाण्डेयः उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, विनोद प्रकाशन, आगरा-2009।

एम.के. मंगल, शुभ्रा चतुर्वेदीः भारतीय समाज में शिक्षा।

रामपाल सिंह, रमेश चन्द्रः समाज तथा शिक्षा।

अशोक सेनानीः शिक्षा सिद्धान्त एवं भारतीय भारत में शिक्षा।

नवबोधः समसामयिक भारतीय समाज में शिक्षा।

डॉ. रामशकल पाण्डेयः भारतीय शिक्षा की समसामयिक समस्याएँ।

रामपाल सिंहः शिक्षा तथा भारतीय समाज।

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 24, अंक 3, दिसंबर 2017

*शोध टिप्पणी/संवाद*

# विकलांग एवं सामान्य किशोर-किशोरियों के आत्मविश्वास का तुलनात्मक अध्ययन

**संजीव कुमार शुक्ला***

***सारांश***

*प्रस्तुत अध्ययन चयनित जनसमुदाय के आत्मविश्वास स्तर को ज्ञात करने हेतु किया गया है। इसके लिए सर्वेक्षण विधि द्वारा आंकड़ों को एकत्र किया गया। प्रतिदर्श का चयन यादृच्छिक विधि के माध्यम से किया गया है जिसमें 100 प्रतिदर्श हाईस्कूल स्तर के लगभग 14-16 वर्ष की आयु के ऊपर (50 किशोर एवं 50 किशोरियाँ) मध्य प्रदेश के ग्वालियर जिले से संबंधित हैं। आंकड़ों को एकत्र करने के लिए श्रीमती बीना पसरीचा व डॉ. ए. पाण्डेय द्वारा निर्मित व्यक्तिगत सूचना पत्र एवं आत्मविश्वास मापनी का प्रयोग किया गया है। एकत्रित आंकड़ों के विश्लेषण हेतु सांख्यिकीय विधि टी-टेस्ट का प्रयोग किया गया। प्राप्त परिणाम के आधार पर यह ज्ञात हुआ कि सामान्य किशोर-किशोरियों की तुलना में विकलांग किशोर-किशोरियों के आत्मविश्वास का स्तर निम्न पाया गया है। तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि विकलांग किशोर-किशोरियों के आत्मविश्वास की कमी का सबसे बड़ा कारण उनकी विकलांगता है और साथ ही वातावरण, पारिवारिक वातावरण, विद्यालयी वातावरण, सहपाठी आदि भी कारण हैं। अतः हमें इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि हमें ऐसे वातावरण में उन्हें रखा जाना चाहिए जहां उन्हें प्रोत्साहन मिले न कि दया जिससे उनमें आत्मविश्वास का विकास हो सके।*

*सहायक प्रोफेसर, (बी.एड. विभाग), श्रीगाँधी महाविद्यालय, सिधौली, सीतापुर, उत्तर प्रदेश

समाज के सामान्य लोग उन लोगों को विकलांग मानते हैं, जो सामान्य लोगों से शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक रूप में सार्थक सीमा तक हटकर होते हैं और यह विचलन इतना अधिक होता है कि ये लोग समाज या परिवार के लिए समस्या बन जाते हैं। विकलांगता का सही अर्थ जानने के लिए हमें सर्वप्रथम यह जानना चाहिए कि सामान्य विशिष्टता क्या है?

यह एक सापेक्षिक संकल्पना है। किसी भी व्यक्ति को सामान्य माना जाएगा यदि वह अधिकांश सामाजिक परिस्थितियों में अधिकांश लोगों की भाँति व्यवहार करे। सामान्यवादिता या अपवादिता का प्रत्यक्षीकरण स्थिर नहीं होता बल्कि यह समय के साथ-साथ बदलता रहता है। जितना अधिक कोई समाज विचलित होता जाता है उतना ही वहां असामान्य लोगों की संख्या बढ़ती जाती है। ई.ए. किर्क पैट्रिक के शब्दों में– ''*विकलांग बालक वह होता है जो सामान्य बालकों से शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक गुणों में इतना हट कर होता है कि उसे स्कूल प्रचलनों या शैक्षिक सेवाओं में उसकी क्षमता को अधिकतम सीमा तक विकसित करने के लिए संशोधन की आवश्यकता होती है।*'' आमतौर पर देखा जाता है कि यदि कोई बालक किसी रूप (हाथ, पैर, आँख, कान) में अक्षम है तो उसे विकलांग मान लिया जाता है। यह जरूरी नहीं हैं कि जो व्यक्ति शारीरिक रूप से अक्षम हो वह किसी कार्य के योग्य नहीं। अगर वह पैरों से विकलांग है तो वह बैठने वाला कार्य कर सकता है, परन्तु हमारी यही कुन्द मानसिकता ही ऐसे बालकों में आत्मविश्वास की कमी कर देती है। कहते हैं किसी भी कामयाबी के लिए पहली सीढ़ी खुद पर भरोसा यानि आत्मविश्वास है। विकलांग एवं सामान्य किशोर-किशोरियों में शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से क्रान्तिकारी परिवर्तन होते हैं। इसी अवस्था में वह अच्छा या बुरा, देश प्रेमी या देशद्रोही, धार्मिक, परिश्रमी, अकर्मण्य, सामाजिक या असामाजिक, शिष्ट या अशिष्ट, सभ्य या असभ्य बन सकता है। अतः इनको इस काल में उचित मार्ग प्रदर्शन की आवश्यकता पड़ती है जिससे उनमें आत्मविश्वास का विकास हो सके। शैक्षिक दृष्टि से यह काल अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसलिए सुनियोजित शिक्षा की व्यवस्था करना नितान्त आवश्यक है। जब कोई व्यक्ति निडरता से कार्य नहीं कर पाता है, तो उसे उस कार्य को करने में भय की अनुभूति होती है, और संशय भी रहता है कि वह कार्य ठीक से नहीं कर पा रहा है। इसका तात्पर्य यह है कि उसे अपनी योग्यताओं का ज्ञान नहीं है। यदि व्यक्ति को अपनी क्षमता का ज्ञान है तथा उस पर पूर्ण रूपेण विश्वास भी है तो वह निडरता से कार्य करता है और अपने

ऊपर विश्वास होने का लाभ उठाते हुए स्वयं, अपनों के लिए तथा समाज व राष्ट्र का कल्याण कर सकता है। अत: आत्मविश्वास का शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान है।

अधिकांशत: देखा गया है कि सामान्य बच्चों की अपेक्षा विकलांग बच्चों में आत्मविश्वास की कमी होती है। स्वशक्ति का अस्तित्व बच्चों में जन्म से विद्यमान होता है, और इस स्वशक्ति का विकास कुछ तो बालकों पर और कुछ वातावरण पर निर्भर करता है। डॉ. बसवन्ना के अनुसार- *''आत्मविश्वास वह शक्ति है जिसके द्वारा व्यक्ति को अपनी शक्तियों का बोध होता है और उसमें दृढ़ता आती है और इसी दृढ़ता के आधार पर व्यक्ति कार्य को सुव्यवस्थित ढंग से पूर्ण कर लेता है''*। आत्मविश्वास वह प्रकाश है जो भयंकर अंधकार में भी हमें उचित मार्ग दिखाता है। आत्मविश्वास के कारण ही सफलता मिलती है। वास्तव में आत्मविश्वास का कोई विकल्प नहीं, वहीं आत्मविश्वासहीन व्यक्ति किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर बिना पैंदी के लोटे की भांति इधर से उधर लुढ़कते रहते हैं। इस अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा यही जानने का प्रयास किया गया है कि क्या वाकई में विकलांगता ही आत्मविश्वास की कमी की वजह है? क्या वह सामान्य बच्चों की तरह आत्मविश्वासी नहीं हैं ? अगर हाँ तो क्या कारण हैं? और किस प्रकार इसको दूर किया जा सकता है, आदि कई प्रश्न ऐसे हैं जिनके उत्तर जानने के लिए इस अध्ययन की आवश्यकता पड़ी।

**समस्या कथन - ''विकलांग एवं सामान्य किशोर-किशोरियों के आत्मविश्वास का तुलनात्मक अध्ययन''।**

**(क) उद्देश्य**

- विकलांग एवं सामान्य किशोरों के आत्मविश्वास का तुलनात्मक अध्ययन।
- विकलांग एवं सामान्य किशोरियों के आत्मविश्वास का तुलनात्मक अध्ययन।
- सामान्य किशोर-किशोरियों के आत्मविश्वास का तुलनात्मक अध्ययन।
- विकलांग किशोर-किशोरियों के आत्मविश्वास का तुलनात्मक अध्ययन।

**(ख) परिकल्पनाएं**

- विकलांग एवं सामान्य किशोरों के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- विकलांग एवं सामान्य किशोरियों के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- सामान्य किशोर-किशोरियों के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- विकलांग किशोर-किशोरियों के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

**(ग) परिसीमाएं**

- **क्षेत्र की दृष्टि से :** प्रस्तुत शोध में आत्मविश्वास के तुलनात्मक अध्ययन में मध्य प्रदेश के ग्वालियर जनपद के विद्यालयों का चयन किया गया है।
- **प्रतिदर्श सम्बन्धी परिसीमन :** प्रस्तुत अध्ययन में मध्य प्रदेश के ग्वालियर जनपद के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत 100 विद्यार्थियों का चयन किया है। इनमें 50 किशोर एवं 50 किशोरियों का चयन किया गया है।
- **विद्यालय की दृष्टि से :** विद्यालय की दृष्टि से उन विद्यालयों का चयन किया गया है जहाँ विकलांग एवं सामान्य किशोर-किशोरियाँ हैं।

**(घ) अध्ययन के चर**

- स्वतंत्र चर– आत्मविश्वास।
- आश्रित चर– विकलांग एवं सामान्य किशोर-किशोरियाँ।

**(ड·) शोध विधि :** प्रस्तुत शोध अध्ययन की प्रकृति सर्वेक्षणात्मक होने के कारण शोधार्थी द्वारा वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

- **जनसंख्या :** प्रस्तुत शोध में मध्य प्रदेश के ग्वालियर जनपद के विद्यालयों में से किशोर-किशोरियों को लिया गया है।
- **न्यादर्श :** प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा न्यादर्श चयन वर्गबद्ध अनियत प्रतिचयन विधि द्वारा ग्वालियर जनपद के पाँच विद्यालयों से हाईस्कूल स्तर के किशोर-किशोरियों का चुनाव इस प्रकार किया है–

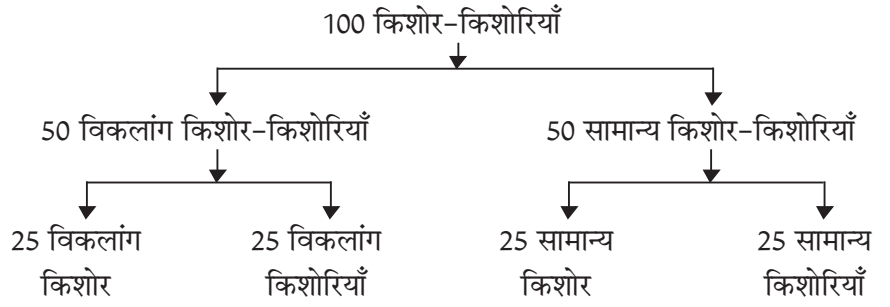


- **उपकरण :** अनुसंधान के उपकरण के रूप में व्यक्तिगत सूचना पत्र एवं आत्मविश्वास मापनी का प्रयोग किया गया, जो श्रीमती बीना पसरीचा द्वारा अनुदित व डॉ ए. पाण्डेय द्वारा निर्मित है।

- **प्रस्तुत सांख्यिकीय प्रविधियाँ :** शोधार्थी ने शोध प्रदत्तों के सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, टी-परीक्षण, स्वतंत्रता का अंश का प्रयोग किया है।

**(च) प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या**

**तालिका-1**

**विकलांग एवं सामान्य किशोरों के आत्मविश्वास का तुलनात्मक अध्ययन**

| समूह | संख्या | मध्यमान | मानक विचलन | मानक त्रुटि | टी-मान | सार्थकता स्तर |
|---|---|---|---|---|---|---|
| विकलांग किशोर | 25 | 26.40 | 6.62 | 1.05 | 2.46 | 0.05 (1.96) सार्थक |
| सामान्य किशोर | 25 | 31.04 | 6.52 | | | |

उपरोक्त तालिका में विकलांग किशोरों का मध्यमान 26.40 व मानक विचलन 6.62 तथा सामान्य किशोरों का मध्यमान 31.04 व मानक विचलन 6.52 है तथा दोनों की मानक त्रुटि 1.05 व टी-मान 2.46 आया है जो कि सार्थकता स्तर 0.05 (1.96) अधिक है। अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकृत हो जाती है और स्पष्ट है कि दोनों में सार्थक अन्तर है।

**तालिका-2**

**विकलांग एवं सामान्य किशोरियों के आत्मविश्वास का तुलनात्मक अध्ययन**

| समूह | संख्या | मध्यमान | मानक विचलन | मानक त्रुटि | टी-मान | सार्थकता स्तर |
|---|---|---|---|---|---|---|
| विकलांग किशोरियां | 25 | 23.68 | 5.84 | 0.88 | 3.16 | 0.05 सार्थक |
| सामान्य किशोरियां | 25 | 28.72 | 5.21 | | | |

उपरोक्त तालिका में विकलांग किशोरियों का मध्यमान 23.68 मानक विचलन 5.84 है तथा सामान्य किशोरियों का मध्यमान 28.72 व मानक विचलन 5.21 है तथा दोनों की मानक त्रुटि 0.88 व टी-मान 3.16 है जो कि सार्थकता स्तर 1.96 से अधिक है, जिससे

स्पष्ट है कि दोनों में व्यापक अन्तर है। अत: यहां पर भी की गई शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

**तालिका-3**

**सामान्य किशोर-किशोरियों के आत्मविश्वास का तुलनात्मक अध्ययन**

| समूह | संख्या | मध्यमान | मानक विचलन | मानक त्रुटि | टी-मान | सार्थकता स्तर |
|---|---|---|---|---|---|---|
| सामान्य किशोर | 25 | 31.04 | 6.52 | 0.93 | 1.36 | 0.05 असार्थक |
| सामान्य किशोरियाँ | 25 | 28.72 | 5.21 | | | |

उपरोक्त तालिका में सामान्य किशोरों का मध्यमान 31.04 व मानक विचलन 6.52 है तथा सामान्य किशोरियों का मध्यमान 28.72 व मानक विचलन 5.21 है। दोनों की मानक त्रुटि 0.93 व टी-मान 1.36 है, जो कि सार्थकता स्तर से कम है, अत: शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है।

**तालिका-4**

**विकलांग किशोर-किशोरियों के आत्मविश्वास का तुलनात्मक अध्ययन**

| समूह | संख्या | मध्यमान | मानक विचलन | मानक त्रुटि | टी-मान | सार्थकता स्तर |
|---|---|---|---|---|---|---|
| विकलांग किशोर | 25 | 26.40 | 6.62 | 0.99 | 1.50 | 0.05 असार्थक |
| विकलांग किशोरियां | 25 | 23.68 | 5.84 | | | |

उपरोक्त तालिका में विकलांग किशोर का मध्यमान 26.40 व मानक विचलन 6.62 है तथा विकलांग किशोरियों का मध्यमान 23.68 व मानक विचलन 5.84 है, दोनों की मानक त्रुटि 0.99 व टी-मान 1.50 है जिससे स्पष्ट होता है कि दोनों में सार्थक अन्तर है क्योंकि टी का मान सार्थकता स्तर से कम है। अत: यहाँ पर भी की गयी शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है।

**निष्कर्ष**

**परिकल्पना 1 :** यहाँ शोध परिकल्पना अस्वीकृत हो जाती है। इसमें दोनों वर्गों में सार्थक अन्तर है। विकलांग किशोरों में आत्मविश्वास की कमी पाई गई। अत:

स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि सामान्य किशोरों की अपेक्षा विकलांग किशोरों में आत्मविश्वास की कमी होती है।

**परिकल्पना 2 :** यहाँ भी सार्थक अन्तर पाया गया है क्योंकि हमारी शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है। इससे स्पष्ट होता है कि सामान्य किशोरियों में जहाँ आत्मविश्वास है वहीं विकलांग किशोरियाँ हीन भावना की शिकार हैं।

**परिकल्पना 3 :** इस अध्ययन में शून्य परिकल्पना स्वीकृत हो जाती है और यहाँ पाया गया है कि सामान्य किशोर-किशोरियों में कोई अन्तर नहीं है दोनों में आत्मविश्वास है और दोनों ही सामान्य रूप से स्थिर हैं।

**परिकल्पना 4 :** यहाँ पर भी हमारी शून्य परिकल्पना स्वीकृत हो जाती है और पाया गया है कि विकलांग किशोर-किशोरियों के आत्मविश्वास का स्तर लगभग सामान्य है और दोनों में इसकी कमी पाई गई है।

**शैक्षिक निहितार्थ :** विकलांगता की समस्या एक सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक समस्या है क्योंकि विकलांग व्यक्ति एक ऐसी श्रेणी का निर्माण करते हैं जो देशकाल एवं संस्कृति की सीमा से बाहर सम्पूर्ण विश्व में विद्यमान हैं और सम्भवत: इसलिये विभिन्न प्रकार के विकलांग व्यक्तियों की समस्याओं के निदान एवं समाधान तथा विकलांग की सहायता एवं पुनर्वासन के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी सुनियोजित प्रयास किये जाते हैं। प्रस्तुत शोधकार्य में सिर्फ सामान्य और विकलांग किशोर-किशोरियों को, अपने अध्ययन का विषय बनाया गया है। इस लघु शोध कार्य में मानव के मनोवैज्ञानिक पक्ष को अध्ययन के लिये चुना गया है।

प्रस्तुत अध्ययन के प्राप्त परिणामों से यह स्पष्ट है कि दोनों वर्गों के आत्मविश्वास जानने हेतु यह शोध उपयोगी सिद्ध होगा। दोनों वर्गों के आत्मविश्वास स्तर के आधार पर कहना उचित होगा कि वर्तमान समय में इस पर ध्यान देने की आवश्यकता है। तुलनात्मक अध्यनन से पता चलता है कि जहाँ एक ओर सामान्य किशोर-किशोरियों में आत्मविश्वास अधिक है, वहीं दूसरी ओर विकलांग किशोर-किशोरियों में इसका स्तर नीचे है। अत: हमें इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि हमें ऐसे शिक्षा प्रबंध करना चाहिए और उन्हें ऐसे वातावरण में रखा जाना चाहिए जहाँ उन्हें प्रोत्साहन मिले न कि दया। अध्ययन के आधार पर स्पष्ट होता है कि दोनों में व्यापक अन्तर है और इस अन्तर को कम करने के लिए हमें अपनी विद्यालयी व्यवस्था एवं घर के वातावरण पर

ध्यान देने की आवश्यकता है, जिससे ऐसे बच्चों को प्रोत्साहन मिले और उनमें आत्मविश्वास का विकास हो सके।

## संदर्भ

शुक्ला, संजीव कुमार (2015) *सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन,* परिप्रेक्ष्य, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा), नई दिल्ली, वर्ष–22, अंक–2, अगस्त 2015, पृष्ठ 91–102।

शुक्ला, संजीव कुमार (2016) *विद्यालयों में सामान्य एवं मूक बधिर विद्यार्थियों का समायोजनः ग्वालियर जनपद का केस अध्ययन,* परिप्रेक्ष्य, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा), नई दिल्ली, वर्ष–23, अंक–2, अगस्त 2016, पृष्ठ 105–112।

शुक्ला, संजीव (2010) ''*विकलांगता एवं विकलांगों का पुर्नवास*'', शिक्षामित्रः त्रैमासिक जर्नल, एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा, वर्ष–3, अंक–2, दिसम्बर 2010, पृष्ठ–17–20।

शुक्ला, संजीव कुमार (2014) ''*समान अवसर, अधिकारों की सुरक्षा और पूर्ण भागीदारी अधिनियम – 1995 और विकलांगता,* विद्यावार्ता : त्रैमासिक जर्नल, हर्षवर्धन पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, लिंबागणेश, जिला–बीड़, महाराष्ट्र, वर्ष–08, वोल्यूम –06 अक्टूबर से दिसम्बर 2014, पृष्ठ – 148–150।

शुक्ला, संजीव कुमार (2015) ''*विकलांग बालक व शिक्षण पद्धति*'', विद्यावार्ताः त्रैमासिक जर्नल, हर्षवर्धन पब्लिकेशन प्राइवेट लि0, लिम्बागणेश, जिला – बीड़, महाराष्ट्र, वर्ष–09, वोल्यूम–01, जनवरी से मार्च 2015, पृष्ठ – 36–41।

शुक्ला, संजीव कुमार (2014) : ''*विकलांगता की चुनौतियां*'', जर्नल ऑफ सोशियो–इकोनोमिक रिव्यु, माननीय कांशीराम शोध पीठ, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश, वोल्यूम–2, अंक–1 अक्टूबर–2014, पृष्ठ–96–98।

शुक्ला, संजीव कुमार व शर्मा, अशोक कुमार एवं भाटिया, तारेश (2014) : *प्रतिबल के सन्दर्भ में सामान्य तथा शारीरिक विकलांग विद्यार्थियों का अध्ययन,* शोध–धारा जर्नल, शैक्षिक एवम् अनुसंधान संस्थान, उरई–जालौन (उ.प्र.), वोल्यूम–2 – 3, जून से सितम्बर 2014, पृष्ठ – 233–237।

सिंह, अजय कुमार (2008) : *भारत में समावेशित शिक्षा का स्वरूप,* परिप्रेक्ष्य, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा), नई दिल्ली, वर्ष–15, अंक–1, अप्रैल 2008, पृष्ठ–81–86।

सिंह, रजनी रंजन एवं नामदेव, हेमन्त (2014) : *भारत में समावेशी शिक्षा की दशा और दिशा,* परिप्रेक्ष्य, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा), नई दिल्ली, वर्ष–21, अंक–3, दिसम्बर 2014, पृष्ठ–1–18।

शर्मा, संदीन (2007) : *भारत में विकलांगों की शिक्षा की एक हिस्टोरिकल बैकग्राउंड,* भारतीय आधुनिक शिक्षा, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली, वर्ष-28, अंक-4, अप्रैल-2007, पृष्ठ-110-115।

सरोज, मोनिका एवं मिश्रा, उषा (2013), *ग्रामीण विकलांगों हेतु रोजगार की जानकारी एवं जागरूकता,* कुरूक्षेत्र, प्रकाशन विभाग, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, वर्ष-59, अंक-04, फरवरी 2013, पृष्ठ-26-30।

लाखोरे, राम (2010), *मध्य प्रदेश में माध्यमिक स्तर के विकलांग बालकों की शिक्षा के लिए किये गये शासकीय प्रयासों का मूल्यांकन,* अप्रकाशित एम.एड. लघु शोध प्रबंध, शिक्षा अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर, मध्यप्रदेश।

कुमारी, रिकू (2013), *विशिष्ट शिक्षा के शिक्षकों की समस्याओं का अध्ययन,* अप्रकाशित, एम0एड0 लघुशोध प्रबन्ध, शिक्षा अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर, मध्यप्रदेश।

सरोज, मोनिका एवं मिश्रा, ऊषा (2010) *उच्च एवं निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर विद्यार्थियों की आवश्यकताएं और उनका समग्र व्यक्तित्व विकास,* परिप्रेक्ष्य, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा), नई दिल्ली, वर्ष - 17, अंक-3, दिसम्बर 2010, पृष्ठ -71-82।

आमेटा, देवेन्द्र एवं तिनका, राकेश कुमार (2015), *समावेशित शिक्षा विद्यालयों में विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों को प्रदत्त सुविधाओं का अध्ययन,* भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, भारतीय शिक्षा शोध संस्थान, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, वर्ष-34, अंक-1, जनवरी-जून-2015 पृष्ठ-7-11।

www.rojgarsamachar.gov.in पर वेब-विशेष खण्ड के तहत आलेख- ''*भारत को विकलांगजन अनुकूल बनाने के लिए सुगम भारत अभियान,*'' रोजगार समाचार : प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, वेब-विशेष खण्ड, वोल्यूम-23, 24 सितम्बर 2015।

पाण्डा, बी.के. (1991) *विकलांगों के प्रति माता-पिता एवं समुदाय का व्यवहार,* बुच एम.बी., शैक्षिक शोध का पंचम सर्वेक्षण, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, दिल्ली, वैलूम-द्वितीय (1988-92), पृष्ठ-1559।

''*समेकित शिक्षा*'' के अन्तर्गत शिक्षण प्रशिक्षण हेतु ट्रेनिंग माड्यूल, सर्व शिक्षा अभियान, उ.प्र. सभी के लिए शिक्षा परियोजना परिषद्, विद्या भवन, निशातगंज, लखनऊ।

भार्गव, महेश (2007), *विशिष्ट बालक-शिक्षा एवं पुर्नवास,* एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।

बिष्ट, आभा रानी एवं सक्सेना, स्वाति (2004-2005), *विशिष्ट बालक,* विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

ऋषिश्वर, विनय (2011–2012), *विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा तथा निर्देशन एवं परामर्श*, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

वर्मा, बी.एस. एवं अग्रवाल, ज्योति (2013), *विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों की शिक्षा तथा निर्देशन एवं परामर्श,* साहित्य प्रकाशन, आगरा।

सिंह, ए.एन. एवं सिंह, बी.के. (2007), *सामाजिक अनुसंधान,* मै. रैपिड बुक सर्विस, लखनऊ।

सिंह, ए0एन0 (2007), *सांख्यिकी,* लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

सुखिया, एस.पी. व मेहरोत्रा, पी.वी. एवं मेहरोत्रा, आर.एन. (1990), *शैक्षिक अनुसन्धान के मूल तत्व*, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

गुप्ता, एस.पी. एवं गुप्ता, अलका (2011), *साँख्यिकीय विधियाँ,* शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

सिंह, अरूण कुमार (2014), *मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ,* मोतीलाल बनारसी दास, पटना।

पाठक, पी.डी. (2013–2014), शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

सिंह, ए.एन. एवं गर्ग, नेहा (2007), *सांख्यिकी के सिद्धान्त*, समाज कार्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

राय, पारसनाथ (1996), *अनुसन्धान परिचय,* लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।

अग्रवाल, नीता (2014), *बाल विकास,* अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

भटनागर, ए.बी. व भटनागर, मीनाक्षी एवं भटनागर, अनुराग (2010), *अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया,* आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।

सिंह, अरूण कुमार (2009), *शिक्षा मनोविज्ञान*, भारती भवन (पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स), पटना।

श्रीवास्तव, डी0एन0 एवं श्रीवास्तव, वी.एन. (नवीन संस्करण), *अनुसंधान विधियाँ,* साहित्य प्रकाशन, आगरा।

गौर, श्याम सिंह (नवीन संस्करण), *विशिष्ट शिक्षा,* साहित्य प्रकाशन, आगरा।

कपिल, एच.के. (2004), *अनुसन्धान विधियाँ,* एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।

सरीन, शशिकला एवं सरीन, अंजनी (नवीन संस्करण), *शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ,* विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

मंगल, एस.के. (2013), *शिक्षा मनोविज्ञान,* पी.एच.आई. लर्निंग प्रा.लि. दिल्ली।

कुमार, संजीव (2008), *विशिष्ट शिक्षा,* जानकी प्रकाशन, पटना।

बरौलिया, ए. एवं पाराशर, राधिका व शर्मा, एच.एस. (नवीन संस्करण), *विशिष्ट वर्ग के बालकों की शिक्षा,* राधा प्रकाशन मन्दिर प्रा.लि., आगरा।

शर्मा, आर.के. एवं पाराशर, दीपिका व दुबे, एस.के. (2015), *समावेशी शिक्षा,* राधा प्रकाशन मन्दिर प्रा.लि., आगरा।

सारस्वत, मालती (2007), *शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा,* आलोक प्रकाशन, लखनऊ।

मिश्र, आर.एम. (2010), *शिक्षा के मनोवैज्ञानिक प्रयोग : परीक्षण एवं सांख्यिकी,* आलोक प्रकाशन, लखनऊ।

सिंह, जगत (2004), *विकलांग बालक,* प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।

गेरेट, ई.एच. (1995), *शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकी के प्रयोग,* कल्याणी पब्लिशर्स, दिल्ली।

सिंह, एन. एवं अरोड़ा, पी0 (2008), *शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ,* पद्मा पब्लिकेशन्स, जयपुर।

पाल, एच.आर. एवं शर्मा, एम. (2009), *मापन आकलन एवं मूल्यांकन,* क्षिप्रा पब्लिशर्स, दिल्ली।

सिंह, एम. (2010), *शिक्षा मनोविज्ञान,* पी.एच. पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

मिश्रा, वी. (2003), *विकलांगों के अधिकार,* कल्याणी शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली।

कौशिक, बी. (1977), *विकलांग शिक्षा,* हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

पाल, एच.आर. एवं पाल, ए. (2010), *विशिष्ट बालक,* मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।

पाल, एच.आर. (2011), *प्रतिभाशालियों की शिक्षा,* क्षिप्रा प्रकाशन, दिल्ली।

बैस, एन.एस. एवं सूत्रकार, बी. (2008), विशिष्ट वर्ग के बालकों की शिक्षा, जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर।

अग्रवाल, जी. (1981), *विकलांगता: समस्या एवं समाधान,* निधि प्रकाशन, दिल्ली।

भार्गव, आर. एवं आराधना (2012), *विशिष्ट बालक तथा माता-पिता की शिक्षा,* एच.आई.बी. एस., आगरा।

भनोट, एस. (2012), *श्रवण-क्षतियुक्त बालक: कारण, पहचान एवं उपचार,* कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

जैन, कमलेश (2012), *उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान,* साहित्य प्रकाशन, आगरा।

अग्रवाल, सन्ध्या (2007-2008), *शिक्षा मनोविज्ञान,* विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी।

शर्मा, अंजली एवं शर्मा, संध्या (2008), *शिक्षा मनोविज्ञान,* अनु प्रकाशन, जयपुर।

लाल, रमन बिहारी एवं पलोड़, सुनीता (2011), *अधिगमकर्ता का मनोविज्ञान एवं शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया,* आर.लाल. बुक डिपो, मेरठ।

शर्मा, कीर्तिका (2009), *शैक्षिक मनोविज्ञान एक अध्ययन,* आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।

भाटिया, के.के. (2012), *शिक्षण अधिगम (सीखना) के सिद्धान्त,* अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

परवीन, आबिदा (2007), *शिक्षण एवं अधिगम के मनो-सामाजिक आधार,* आस्था प्रकाशन, जयपुर।

मिश्रा, एस. (नवीन संस्करण), *अधिगम का मनोसामाजिक आधार एवं शिक्षण,* श्री कविता प्रकाशन, जयपुर।

बिष्ट, एच.बी. (2011), *बाल विकास,* अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

सिंह, कर्ण (2008-09), *अधिगम का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया,* गोविन्द प्रकाशन, लखीमपुर-खीरी।

शर्मा, बी.एन. (2008) *अधिगमकर्त्ता का विकास तथा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया,* साहित्य प्रकाशन, आगरा।

बैस, नरेन्द्र सिंह एवं दत्ता, संजय व गर्ग, ओम प्रकाश (2011), *शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में अधिगमकर्त्ता का विकास,* साहित्य प्रकाशन, आगरा।

सिंह, गया (2010), *अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया,* आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।

शर्मा, एम. (2014), *विशिष्ट बालक : अवधारणा, विकास एवं शिक्षा,* कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

पाल, एस. एवं विश्वकर्मा, बी. (2013), *विशेष शिक्षा-शिक्षण,* कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 24, अंक 3 दिसंबर, 2017

*शोध टिप्पणी/संवाद*

# विद्यालय स्तर पर गणित शिक्षण-अधिगम पर प्रशिक्षण कार्यक्रम का प्रभाव

**अश्वनी कुमार गर्ग***

**सारांश**

*गणित शिक्षण को रुचिकर एवं गुणवत्तापूर्ण बनाने तथा प्रदेश के विद्यालयीन बच्चों को राष्ट्रीय स्तर के प्रतियोगी प्रतियोगिताओं के लिये तैयार करने की दृष्टि से मध्यप्रदेश सरकार द्वारा पूरे प्रदेश में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली द्वारा तैयार की गई गणित एवं विज्ञान की पुस्तको को चरणबद्ध तरीके से वर्ष 2017 से लागू करने का निर्णय लिया गया था। इसी क्रम में कक्षा 9 की पुस्तकों को कैसे उपयोग करें के लिये संसाधन व्यक्तियों का 5 दिवसीय प्रशिक्षण क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान भोपाल के माध्यम से कराया गया। प्रशिक्षण के दौरान इन संसाधन व्यक्तियों का प्रशिक्षण पूर्व एवं प्रशिक्षण पश्चात परीक्षण किया गया। इसके लिए 9 प्रश्नों की एक प्रश्नावली का निमार्ण किया गया जिसका पूर्णांक 20 अंक तथा समय 30 मिनट का था। इस प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य संसाधन व्यक्तियों (प्रशिक्षणार्थियों) के स्तर को जानकर प्रशिक्षण के दौरान उनकी कमियों पर चर्चा कर उनका समाधान करना था। इस प्रशिक्षण में प्रदेश के 81 संसाधन व्यक्तियों को गणित विषय पर प्रशिक्षित किया गया। परीक्षण से प्राप्त परिणाम को जहाँ एक ओर अंक के रूप में विश्लेषित किया गया वही संसाधन व्यक्तियों द्वारा किस प्रकार की गलती की गई है, को जानने का प्रयास किया गया।*

---

* सहायक प्राध्यापक (गणित), क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान (एन.सी.ई.आर.टी.), भोपाल

मध्य प्रदेश शासन द्वारा प्रदेश के विद्यालयीन शिक्षा प्राप्त कर रहे बच्चों को राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगी परीक्षाओं के लिये तैयार करने तथा गणित में बच्चों के स्तर में सुधार हेतु वर्ष 2017–18 से पूरे प्रदेश में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली द्वारा तैयार की गई गणित एवं विज्ञान की पुस्तकों को चरणबद्ध तरीके से लागू करने का निर्णय लिया गया है। इन पुस्तकों को लागू करने के पूर्व इन विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों को इन पुस्तको के उपयोग करने के तरीकों से परिचित कराने के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण प्रदान करने का निणर्य लिया गया। इन शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये राज्य स्तर पर संसाधन व्यक्तियों का चयन लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार के आधार पर किया गया और इनको क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान भोपाल के माध्यम से 5 दिवसीय प्रशिक्षण प्रदान करने का निर्णय लिया गया। इन चयनित संसाधन व्यक्तियों को प्रशिक्षण मई, 2017 में दो चक्रों में आयोजित किया गया।

क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान भोपाल द्वारा पुस्तकों का उपयोग कैसे करें, को ध्यान में रखते हुए प्रशिक्षण सामग्री का निमार्ण किया गया तथा यह भी निर्णय लिया गया कि प्रशिक्षण के पूर्व एवं पश्चात इन संसाधन व्यक्तियों का परीक्षण किया जाय ताकि इनकी समस्याओं को जानते हुए प्रशिक्षण में इन पर चर्चा की जाय। इसी को ध्यान में रखते हुए 9 प्रश्नों की एक प्रश्नावली का निमार्ण किया गया जिसका पूर्णांक 20 अंक तथा समय 30 मिनट का था। इस प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य संसाधन व्यक्तियों (प्रशिक्षणार्थियों) के स्तर को जानकर प्रशिक्षण के दौरान उन कमियों पर चर्चा कर उनका समाधान करना था। इस प्रशिक्षण में प्रदेश के 81 संसाधन व्यक्तियों को गणित विषय पर प्रशिक्षित किया गया। इस प्रशिक्षण में राष्ट्रीय पठ्यचर्या की रूपरेखा को ध्यान में रखते हुए जहाँ उसके गणितीय शिक्षा शास्त्र पर चर्चा की गई वही इसके दर्शन के साथ इसकी विषयवस्तु के प्रस्तुतीकरण पर चर्चा की गई। प्रशिक्षण पूर्व परीक्षण, प्रशिक्षण के उद्घाटन सत्र के बाद तथा पोस्ट परीक्षण समापन सत्र के पूर्व आयोजित किया गया। प्रशिक्षण पूर्व–परीक्षण से प्राप्त परिणाम को प्रशिक्षण के दौरान उससे संबंधित विषयवस्तु के साथ चर्चा किया गया। परीक्षण से प्राप्त परिणाम को जहाँ एक ओर अंक के रूप में विश्लेषित किया गया वही संसाधन व्यक्तियों द्वारा किस प्रकार की गलती की गई है, को जानने के लिये प्रश्न को निम्नांकित प्रकार से बाँट कर विश्लेषित किया गया:

1. प्रक्रियात्मक त्रुटि (Procedural errors)
2. समझ की त्रुटि (Understand errors)
3. गणनात्मक त्रुटि (Computational errors)
4. अवधारणात्मक त्रुटि (Conceptual errors)
5. संयोगवश त्रुटि (Accidental errors)
6. हल करने का प्रयास नहीं किया (No Attempted at all)
7. हल किया लेकिन गलत (Attempted but not correct)
8. सही हल किया (Attempted and correct)

प्रशिक्षण पूर्व एवं प्रशिक्षण पश्चात परीक्षण में प्रश्नवार निम्नानुसार परिणाम प्राप्त हुए–

**प्रश्न 1: गणित एक सरल विषय है। इसके पक्ष में अपने चार विचार लिखिए:**

| क्र. सं. | त्रुटियों का वर्गीकरण | प्रशिक्षण पूर्व परीक्षण | | प्रशिक्षण पश्चात परीक्षण | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | आवृति | प्रतिशत | आवृति | प्रतिशत |
| 1. | प्रक्रियात्मक त्रुटियां | 32 | 39.5 | 2 | 2.5 |
| 2. | हल करने का प्रयास नहीं किया | 3 | 3.7 | 0 | 0.0 |
| 3. | हल किया लेकिन गलत | 30 | 37.0 | 3 | 3.7 |
| 4. | सही | 16 | 19.8 | 76 | 93.8 |
| | योग | 81 | 100.0 | 81 | 100.0 |

इस प्रश्न के उत्तर में अधिकतर संसाधन व्यक्तियों ने बिना प्रश्न को पढ़े प्रश्न से हट कर अपने अनुभव को उतारने का प्रयास किया जिसका प्रश्न द्वारा चाहे गये उत्तर से कोई संबंध नही दिखाई दे रहा था। लेकिन पोस्ट परीक्षण में संसाधन व्यक्तियों ने अपनी कमी को जान कर दूर करने का प्रयास किया ।

**प्रश्न 2: गणित के प्रति बच्चों की रुचि अन्य विषयों की तुलना में ज्यादा होती है इसके पक्ष/विपक्ष में आप अपने चार विचार लिखिए।**

| क्र. सं. | त्रुटियों का वर्गीकरण | प्रशिक्षण पूर्व परीक्षण | | प्रशिक्षण पश्चात परीक्षण | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | आवृति | प्रतिशत | आवृति | प्रतिशत |
| 1. | प्रक्रियात्मक त्रुटियां | 32 | 39.5 | 3 | 3.7 |
| 2. | हल करने का प्रयास नहीं किया | 3 | 3.7 | 1 | 1.2 |
| 3. | हल किया लेकिन गलत | 30 | 37.0 | 5 | 6.2 |
| 4. | सही | 16 | 19.8 | 72 | 88.9 |
| | योग | 81 | 100.0 | 81 | 100.0 |

इस प्रश्न के उत्तर में अधिकतर संसाधन व्यक्तियों ने बिना सोचे समझे उत्तर देने का प्रयास किया। विश्लेषण में पाया गया कि अधिकतर संसाधन व्यक्तियों ने प्रश्न को ध्यान लगाकर पढ़ने का ही प्रयास नहीं किया है। लेकिन प्रशिक्षण पश्चात परीक्षण में उसी प्रश्न पर प्रशिक्षकों ने सोच समझ कर उत्तर दिया ।

**प्रश्न 3: यदि $\sqrt{2}$ परिमेय संख्या नहीं है तो $1 + \sqrt{2}$ भी परिमेय संख्या नहीं होगी। सिद्ध कीजिये ।**

| क्र. सं. | त्रुटियों का वर्गीकरण | प्रशिक्षण पूर्व परीक्षण | | प्रशिक्षण पश्चात परीक्षण | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | आवृति | प्रतिशत | आवृति | प्रतिशत |
| 1. | प्रक्रियात्मक त्रुटियां | 1 | 1.2 | 0 | 0.0 |
| 2. | समझ में त्रुटियां | 15 | 18.5 | 12 | 14.8 |
| 3. | संगणना त्रुटियां | 3 | 3.7 | 0 | 0.0 |
| 4. | वैचारिक त्रुटियां | 1 | 1.2 | 0 | 0.0 |
| 5. | हल करने का प्रयास नहीं किया | 4 | 4.9 | 4 | 4.9 |
| 6. | हल किया लेकिन गलत | 10 | 12.3 | 0 | 0.0 |
| 7. | सही | 47 | 58.0 | 65 | 80.2 |
| | योग | 81 | 100.0 | 81 | 100.0 |

**प्रश्न 4: इनमें से कौन-कौन बहुपद नहीं है और क्यों?**

अ) $x+\frac{1}{x}$ .....

ब) $x+\sqrt{2}$ .....

स) $x+xy$ .....

द) $x+\frac{1}{\sqrt{2}}$ .....

| क्र. सं. | त्रुटियों का वर्गीकरण | प्रशिक्षण पूर्व परीक्षण | | प्रशिक्षण पश्चात परीक्षण | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | आवृति | प्रतिशत | आवृति | प्रतिशत |
| 1. | प्रक्रियात्मक त्रुटियां | 38 | 46.9 | 5 | 6.2 |
| 2. | संगणना त्रुटियां | 1 | 1.2 | 0 | 0.0 |
| 3. | वैचारिक त्रुटियां | 1 | 1.2 | 1 | 1.2 |
| 4. | हल करने का प्रयास नहीं किया | 1 | 1.2 | 0 | 0.0 |
| 5. | हल किया लेकिन गलत | 2 | 2.5 | 1 | 1.2 |
| 6. | सही | 38 | 46.9 | 74 | 91.4 |
| | योग | 81 | 100.0 | 81 | 100.0 |

उपरोक्त प्रश्न के C एवं D भाग को अधिकतर शिक्षकों ने गलत हल किया। कोई अगर बहुपद है या नहीं है तो क्यों है, इसका कारण अधिकरतर संसाधन व्यक्तियों ने या तो दिया ही नहीं और अगर दिया भी वह तर्क संगत नहीं पाया गया।

**प्रश्न 5: $1+\sqrt{2}$ को संख्या रेखा पर प्रदर्शित करते हुये उसके चरण लिखिए।**

| क्र. सं. | त्रुटियों का वर्गीकरण | प्रशिक्षण पूर्व परीक्षण | | प्रशिक्षण पश्चात परीक्षण | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | आवृति | प्रतिशत | आवृति | प्रतिशत |
| 1. | प्रक्रियात्मक त्रुटियां | 2 | 2.5 | 1 | 1.2 |
| 2. | समझ में त्रुटियां | 20 | 24.7 | 20 | 24.7 |
| 3. | संगणना त्रुटियां | 2 | 2.5 | 0 | 0.0 |
| 4. | वैचारिक त्रुटियां | 9 | 11.1 | 2 | 2.5 |
| 5. | हल करने का प्रयास नहीं किया | 6 | 7.4 | 1 | 1.2 |
| 6. | हल किया लेकिन गलत | 4 | 4.9 | 7 | 8.6 |
| 7. | सही | 38 | 46.9 | 50 | 61.7 |
| | योग | 81 | 100.0 | 81 | 100.0 |

अधिकतर शिक्षक $\sqrt{2}$ को संख्या रेखा पर प्रदर्शित कर पाये। उन्होंने $1+\sqrt{2}$ को कैसे प्रदर्शित कर सकते हैं के बारे में सोचकर हल करने का प्रयास नहीं किया ।

**प्रश्न 6: किसी त्रिभुज ABC में $\angle B$ व $\angle C$ के अर्द्धक एक दूसरे को बिंदु o पर प्रतिच्छेद करते है। सिद्ध कीजिए $\angle BOC = 90 + \frac{1}{2}\angle A$.**

| क्र. सं. | त्रुटियों का वर्गीकरण | प्रशिक्षण पूर्व परीक्षण | | प्रशिक्षण पश्चात परीक्षण | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | आवृति | प्रतिशत | आवृति | प्रतिशत |
| 1. | प्रक्रियात्मक त्रुटियां | 23 | 28.4 | 3 | 3.7 |
| 2. | संगणना त्रुटियां | 9 | 11.1 | 0 | 0.0 |
| 3. | वैचारिक त्रुटियां | 7 | 8.6 | 0 | 0.0 |
| 4. | आकस्मिक त्रुटियां | 2 | 2.5 | 0 | 0.0 |
| 5. | हल किया लेकिन गलत | 18 | 22.2 | 3 | 3.7 |
| 6. | सही | 22 | 27.2 | 75 | 92.6 |
| | योग | 81 | 100.0 | 81 | 100.0 |

**प्रश्न 7: एक 7 सेमी त्रिज्या तथा 8 सेमी ऊँचाई वाले एक शंकु को पिघलाकर एक सेमी त्रिज्या वाले गोले बनाये गये। गोलों की संख्या ज्ञात कीजिए ।**

| क्र. सं. | त्रुटियों का वर्गीकरण | प्रशिक्षण पूर्व परीक्षण | | प्रशिक्षण पश्चात परीक्षण | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | आवृति | प्रतिशत | आवृति | प्रतिशत |
| 1. | प्रक्रियात्मक त्रुटियां | 4 | 4.9 | 6 | 7.4 |
| 2. | वैचारिक त्रुटियां | 8 | 9.9 | 0 | 0.0 |
| 3. | सही | 69 | 85.2 | 75 | 92.6 |
| | योग | 81 | 100.0 | 81 | 100.0 |

**प्रश्न 8: ''नानू कहती है कि जिस आयत का परिमाप अधिक होता है, उसका क्षेत्रफल अधिक ही होगा।'' नानू के कथन पर आप अपनी राय कारण सहित दें।**

| क्र. सं. | त्रुटियों का वर्गीकरण | प्रशिक्षण पूर्व परीक्षण | | प्रशिक्षण पश्चात परीक्षण | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | आवृति | प्रतिशत | आवृति | प्रतिशत |
| 1. | प्रक्रियात्मक त्रुटियां | 0 | 0.0 | 1 | 1.2 |
| 2. | समझ में त्रुटियां | 41 | 50.6 | 41 | 50.6 |
| 3. | संगणना त्रुटियां | 1 | 1.2 | 1 | 1.2 |
| 4. | वैचारिक त्रुटियां | 6 | 7.4 | 0 | 0.0 |
| 5. | हल करने का प्रयास नहीं किया | 0 | 0.0 | 1 | 1.2 |
| 6. | हल किया लेकिन गलत | 22 | 27.2 | 5 | 6.2 |
| 7. | सही | 11 | 13.6 | 32 | 39.5 |
| | योग | 81 | 100.0 | 81 | 100.0 |

इस प्रश्न में अधिकतर शिक्षकों ने गणना तो सही की मगर नानू क्या कह रही है, को अधिकतर शिक्षकों ने अपने प्रश्न के उत्तर का भाग नहीं बनाया ।

**प्रश्न 9: एक नगर में टैक्सी का किराया पहले एक किलोमीटर का किराया 8 रुपये और उसके बाद की दूरी का किराया 5 रुपये प्रति किलो मीटर है। यदि तय की गई दूरी $x$ किलो मीटर हो और कुल किराया $y$ रुपये हो तो इसका एक रैखिक समीकरण प्रत्येक चरण को स्पष्ट करते हुए लिखिए।**

| क्र. सं. | त्रुटियों का वर्गीकरण | प्रशिक्षण पूर्व परीक्षण | | प्रशिक्षण पश्चात परीक्षण | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | आवृति | प्रतिशत | आवृति | प्रतिशत |
| 1. | प्रक्रियात्मक त्रुटि | 1 | 1.2 | 2 | 2.5 |
| 2. | प्रक्रियात्मक त्रुटि | 12 | 14.8 | 13 | 16.0 |
| 3. | संगणना त्रुटि | 4 | 4.9 | 0 | 0.0 |
| 4. | वैचारिक त्रुटि | 8 | 9.9 | 4 | 4.9 |
| 5. | हल करने का प्रयास नहीं किया | 9 | 11.1 | 0 | 0.0 |
| 6. | हल किया लेकिन गलत | 9 | 11.1 | 0 | 0.0 |
| 7. | सही | 38 | 46.9 | 62 | 76.5 |
| | योग | 81 | 100.0 | 81 | 100.0 |

प्रश्न क्रमांक 3 से 9 के हलों के अवलोकल से यह बात निकल कर आई कि हमारे शिक्षक सिर्फ पुस्तक की प्रश्नावली को पढ़ाकर बच्चों को प्रश्न हल कराते हैं। वे न तो स्वयं और न बच्चों को पाठ में दी गई उस विषयवस्तु की जानकारी को स्वयं पढ़ते हैं और न बच्चों को पढ़ने के लिए पेरित करते हैं। इसमें यह भी एक बात देखने को मिली कि हमारे अधिकांश शिक्षक किसी अन्य जगह से नई जानकारी प्राप्त करने का प्रयास नहीं करते। प्रशिक्षण पूर्व एवं प्रशिक्षण पश्चात परीक्षण से प्राप्त परिणामों का विश्लेषण One Way Anova के माध्यम से किया गया जिसके परीणाम निम्नानुसार पाये गये:

**प्री एवं पोस्ट परीक्षण के बीच अंतर की One Way Anova तालिका**

| प्रकरण का स्रोत | मुक्तांश | वर्ग योग | औसत वर्ग योग | 'F' अनुपात | सार्थकता |
|---|---|---|---|---|---|
| परीक्षण | 1 | 2380.50 | 2380.50 | 172.73 | 0.01 |
| त्रुटि | 160 | 2205.09 | 13.78 | | |
| योग | 161 | 4585.59 | | | |

(स्रोत: शोध अध्ययन् से प्राप्त आंकड़े)

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि परीक्षणवार (प्रशिक्षण पूर्व एवं प्रशिक्षण पश्चात परीक्षण) प्रशिक्षकों की उपलधि के लिए 'F' का मान 51.88 है जो कि 0.01 स्तर पर सार्थक है। अत: कहा जा सकता है कि प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण पूर्व एवं प्रशिक्षण पश्चात परीक्षण के परिणाम में सार्थक अंतर है। प्रशिक्षकों की प्रशिक्षण पूर्व एवं प्रशिक्षण पश्चात परीक्षण के उपलब्धि के माध्य एवं प्रमाप विचलन को हम निम्नांकित सारिणी की सहायता से देख सकते हैं:

**प्रशिक्षण पूर्व एवं प्रशिक्षण पश्चात परीक्षण का माध्य एवं प्रमाप विचलन तालिका**

| क्रमांक | प्रशिक्षण पूर्व परीक्षण | प्रशिक्षण पश्चात परीक्षण |
|---|---|---|
| संख्या (N) | 81 | 81 |
| माध्य (Mean) | 8.43 | 16.10 |
| प्रमाप विचलन (Std. Deviation) | 3.55 | 3.87 |

(स्रोत: शोध अध्ययन् से प्राप्त आंकड़े)

उपरोक्त अवलोकन से स्पष्ट है कि प्रशिक्षण पूर्व परीक्षण एवं प्रशिक्षण पश्चात परीक्षण के माध्यों (प्रशिक्षण पूर्व परीक्षण माध्य = 8.43 एवं प्रशिक्षण पश्चात परीक्षण माध्य = 16.10) मे सार्थक अंतर है जो यह दर्शाता है कि प्रशिक्षण के आधार पर शिक्षकों की दक्षता में सार्थक स्तर पर संवर्धन हुआ है। साथ ही प्रश्नवार प्रशिक्षण पूर्व एवं प्रशिक्षण पश्चात परीक्षण की आवृति का प्रतिशत से भी यह परिलक्षित होता है कि प्रश्नवार

शिक्षकों की गलतियां कम हुई हैं। उन्होंने प्रश्नों को अच्छे से पढ़ने के बाद ही हल करने का प्रयास किया है। प्रशिक्षण के अंत में प्रशिक्षणार्थियों से प्राप्त फीडबैक का विश्लेषण करने पर प्रशिक्षण में स्रोत व्यक्तियों द्वारा विषयवस्तु के प्रस्तुतीकरण को 71% प्रशिक्षणार्थियों ने बहुत अच्छा, 27% ने अच्छा तथा 2% ने सामान्य बताया। इसी प्रकार प्रशिक्षण में स्रोत व्यक्तियों का व्यवहार पर 85% प्रशिक्षणार्थियों ने बहुत अच्छा तथा 15% ने अच्छा बताया। प्रशिक्षण में उपलब्ध कराई गई प्रशिक्षण सामग्री को 54% प्रशिक्षणार्थियों ने बहुत अच्छा, 44% ने अच्छा तथा 2% ने सामान्य बताया।

शत प्रतिशत प्रशिक्षणार्थियों ने इस प्रशिक्षण को अन्य प्रशिक्षणों से भिन्न बताया क्योंकि इस प्रशिक्षण में प्रत्येक विषयवस्तु को सहभागिता के आधार पर पैड़ागाजी का भरपूर उपयोग करते हुए बताया गया। प्रत्येक प्रशिक्षक ने विभिन्न गणितीय कठिनाईयों पर भी चर्चा की। उनके अनुसार इस प्रशिक्षण की सबसे अच्छी बात थी कि प्रतिभागियों को अधिक से अधिक बोलने के अवसर उपलब्ध कराये गये। अधिकतर प्रशिक्षणार्थियों ने संसाधन व्यक्तियों के व्यवहार एवं उनके प्रस्तुतीकरण एवं प्रशिक्षण की विषयवस्तु को सबसे अच्छा बताया। प्रशिक्षण में नई तकनीकी जैसे आई.सी.टी., समावेशी शिक्षा, रचनावाद तथा गणित प्रयोगशाला के प्रयोग को अधिकतर प्रशिक्षणार्थियों ने बहुत अच्छा बताया।

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 24, अंक 3 दिसंबर, 2017

*शोध टिप्पणी/संवाद*

# महिलाओं के सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका

**विरेन्द्र कुमार* एवं शिरीष पाल सिंह****

## *भूमिका*

प्रस्तुत शोध पत्र वर्तमान भारतीय संदर्भ में महिलाओं की शैक्षिक स्थिति एवं सशक्तिकरण के प्रयासों का अध्ययन करने की चेष्टा करता है। भारत की स्वतंत्रता के सात दशक बाद भी महिलाओं को शिक्षा में पूर्ण सहभागिता प्राप्त नहीं हो सकी है। सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर उनकी शिक्षा के लिए किए गए विभिन्न प्रयासों से उनकी स्थिति में सुधार दृष्टिगोचर होता है, लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। विकास के एक मुख्य मापदंड के रूप में शिक्षा के महत्व को देखते हुए यह आवश्यक है कि महिलाओं की शिक्षा पर ध्यान दिया जाए। प्रस्तुत शोध पत्र के द्वारा भारत में महिला साक्षरता की स्थिति का कालक्रमानुसार उल्लेख करते हुए शिक्षा के विभिन्न स्तरों (प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा स्तर) पर महिलाओं के प्रतिनिधित्व का तथ्यात्मक व संख्यात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही प्रस्तुत शोध आलेख के द्वारा वर्तमान समाज में महिलाओं के सशक्तिकरण की बात की गई है। महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। शिक्षा विकास के स्वर्ण दरवाजे को खोलने की चाबी है जिसके द्वारा महिला सशक्त बनती हैं। सशक्त महिला निर्णय लेने, व्यवसाय चुनने इत्यादि सभी क्षेत्रों में अग्रणी भूमिका निभा सकती है। अत: प्रस्तुत शोध पत्र महिला शिक्षा की वर्तमान स्थिति तथा सशक्तिकरण में इसकी भूमिका को दर्शाने का ही प्रयास कर रहा है।

* पी-एच.डी. शोध छात्र, शिक्षा शास्त्र, महात्मा गांधी अंतराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा, महाराष्ट्र
* सह-प्रोफेसर, शिक्षा पीठ, महात्मा गांधी अंतराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा, महाराष्ट्र

**प्रमुख प्रत्यय/शब्दावली:** साक्षरता, प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा, सशक्तिकरण आदि।

**प्रस्तावना**

मानव जीवन में शिक्षा के महत्व से हम सभी भली-भांति परिचित हैं। शिक्षा से हमारा ज्ञान बढ़ता है और ज्ञान द्वारा ही हम अपने जीवन को सुखमय बना सकते है। शिक्षा की जीवन में इतनी अधिक अनिवार्यता है कि कहा गया है ***''बिना शिक्षा व ज्ञान के मनुष्य पशु के समान है।''*** (निरूपमा, 2010 एवं सिंह, 2009). वर्तमान समय में महिलाओं की आबादी समस्त जनसंख्या की आधी है लेकिन पुरुषवादी मानसिकता के कारण उन्हें दुनिया के विभिन्न हिस्सों में समान अवसरों से वंचित किया गया है। नारीवादी विचारों के उदय के बाद हाल के समयों में दुनिया भर में महिलाओं की स्थिति में अत्यधिक सुधार हुआ है। शिक्षा की पहुंच ने महिला अधिकार आंदोलनों को अत्यधिक सफल बनाया है। भारत देश में भी महिला शिक्षा पर समाज और सरकार, दोनों प्रमुख रूप से ध्यान दे रहे हैं क्योंकि शिक्षित महिलाएं देश के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल आबादी में महिलाओं का प्रतिशत 48.2 है। सभी पंचवर्षीय योजनाओं में लिंग अंतर को समाप्त करने एवं महिला सशक्तिकरण को प्राथमिकता के तौर पर सम्मिलित किया जाता रहा है। शिक्षित महिलाएं अपने सामाजिक एव क़ानूनी अधिकारों के प्रति जागरूक हो जाती हैं। वे अपनी संतान के स्वास्थ्य और पालन पोषण के प्रति सजग रहती हैं। उनकी बात को परिवार में गंभीरता से लिया जाता है। ये महिलायें विकास के कार्यों मे पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर परिवार और समाज को आगे बढ़ाती हैं। शिक्षित महिलाएं कृषि, उद्योग आदि की उन्नति मे विशेष रूप से सहायक सिद्ध होती हैं। (सिंह, 2009).

स्त्री शिक्षा के महत्व को महात्मा गांधीजी ने इस प्रकार प्रकट किया था– ''यदि आप एक पुरुष को शिक्षा देते हैं तो एक व्यक्ति को शिक्षित करते हैं, किन्तु यदि आप एक स्त्री को शिक्षा प्रदान करते हैं तो सम्पूर्ण परिवार को शिक्षित करते हैं।'' शिक्षा के अभाव मे महिलाएं शोषण का शिकार बन जाती हैं। यूनिसेफ की 'दुनिया में बच्चों की स्थिति-2004' रिपोर्ट मे कहा गया था कि भारत में पुरुषों की तुलना में महिलाओं में निरक्षरता दर कही अधिक है और लड़कों की तुलना मे प्रत्येक साल बहुत सी लड़कियाँ स्कूल जाने से वंचित रह जाती हैं। डा. राजेंद्र प्रसाद महिलाओं की शिक्षा पर बल देते हुए

कहते हैं कि ''प्राचीन भारत की स्त्रियां निपुणता तथा चतुरता के साथ बुद्धि और त्याग के बल पर गृह एवं अनेकानेक सामाजिक कार्यों में भाग लिया और समाज के सर्वांगीण विकास में सहायक रहीं, कहने की आवश्यकता नहीं है कि वह गणित-शास्त्र, नीति-शास्त्र, धर्म-शास्त्र, अर्थशास्त्र, चिकित्सा शास्त्र आदि सभी विषयों में पारंगत थीं। इन बातों को ध्यान में रखते हुए मैं लड़कियों की शिक्षा को अधिक महत्व देता हूँ।''

इस विचार को काहिरा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन (1994) के दौरान भी अत्यधिक बढ़ावा मिला, जिसमें कहा गया था कि- प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है जो कि लड़कियों को विशेष ध्यान में रखते हुए पूर्ण संसाधनों के साथ उनका विकास किया जाएगा। 1995 में कोपनहेगन के घोषणा पत्र में मानव विकास और सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष में महिला और लड़कियों की शिक्षा को केंद्र में रखा गया था। गहन जाँच के बाद यह स्वीकार किया गया है कि लड़कियों की शिक्षा की विशेष व्यवस्था की जाए। हमारे देश की प्रथम आई.पी.एस. महिला सुश्री किरण बेदी का कहना है कि– ''महिलाएं शिक्षित हों, ज्ञानवान बने, सिर्फ साक्षर होने से कुछ नहीं होगा, इसके साथ ही समाज को भी अपनी मानसिकता मे बदलाव लाना जरूरी है। महिलाएं शिक्षित होंगी तब ही उनको बराबरी का दर्जा प्राप्त हो सकता है वरना नहीं। महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने के लिए उचित माहौल एवं अवसर प्राप्त हो तब ही वे शिक्षा प्राप्त कर सकेंगी एवं आगे बढ़ सकेंगी।'' (वशिष्ठ, 2010). पूर्व राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल ने महिलाओं को साक्षरता और शिक्षा मे प्राथमिकता देने की वकालत की है। उनका कहना है कि समाज को सही मायनों में विकसित करना है, तो इसके लिए महिलाओं का शिक्षित होना बेहद जरूरी है। महिलाओं की साक्षरता की दर में कमी पर भी गहरी चिंता व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि ग्रामीण क्षेत्रो में खास ध्यान दिया जाना चाहिए (वशिष्ठ, 2010). इसकी पुष्टि विभिन्न शोध निष्कर्षों से भी होती है। नायर (2010), ने 'वुमेन्स एजुकेशन इन इंडिया : ए सिचुएशनल स्टॅडी' नामक शोध विषय के द्वारा यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि महिलाओं की शिक्षा में निवेश व्यक्ति, परिवार और राष्ट्र के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण हो सकता है, अत: उस पर ध्यान देने की आवश्यकता है। उनकी शिक्षा को अनदेखा करने से श्रमिक क्षेत्र में केवल असंतुलन ही पैदा होगा। महिलाओं के लिए शिक्षा उनके आत्म सम्मान और आत्मविश्वास का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। सिंह (2016) ने 'इंपार्टेन्स ऑफ एजुकेशन इन इंपावरमेंट ऑफ वुमेन्स इन इंडिया' में अपने शोध के परिणाम स्वरुप यह बताया कि वर्तमान समय में जनसंख्या विस्फोट, संघर्ष, अराजकता, भ्रष्टाचार इत्यादि

की संख्या बहुत तेजी से बढ़ रही है। ऐसी स्थिति में महिलाओं को सशक्त करने की आवश्यकता है। यदि महिला सशक्तिकरण को प्रोत्साहित करना है तो हमें महिलाओं के शैक्षिक कार्यक्रम के लिए वातावरण उत्पन्न करना होगा, जब शैक्षिक और अन्य नीतियां वास्तविक रूप में कार्यान्वित होंगी तभी महिला वास्तव में सशक्त बनेंगी। अहमद, सिन्हा, एवं शास्त्री (2016) ने 'वुमेन्स इंपावरमेंट थ्रो स्किल डेवलपमेंट एंड वोकेशनल एजुकेशन' नामक शोध निष्कर्ष में यह पाया कि भारत सरकार विश्व स्तर के मानकों के अनुरूप महिलाओं के कौशल विकास पर पर्याप्त ध्यान दे रही है। भारत सरकार के कौशल विकास मंत्रालय ने कौशल विकास को प्राथमिकता दी है। नायक एवं महन्ता (2009), ने 'वुमेन्स इंपावरमेंट इन इंडिया' नामक शोध विषय में मुख्य बल महिलाओं की निर्णय लेने वाली शक्ति, वित्तीय स्वायत्तता, असमान लैंगिक भूमिकाओं की स्वीकृति, शिक्षा तक पहुंच, घरेलू हिंसा आदि पर रहा। शिक्षा और रोजगार के लिए महिलाओं की पहुंच का अध्ययन करते हुए पाया गया कि दोनों स्थितियों में लिंग अंतर मौजूद है। शिक्षा के सभी चरणों में लड़कियों की भागीदारी 50 प्रतिशत से नीचे है। इसके अलावा मतदान एवं लोक सभा में महिलाओं की प्रतिभागिता भी बहुत कम है। भट (2015) ने 'रोल ऑफ एजुकेशन इन द इंपावरमेंट ऑफ वुमेन्स इन इंडिया' नामक शोध से यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि एक राष्ट्र को प्रगतिशील बनाने व विकास के रास्ते पर ले जाने में महिलाएं अनिवार्य रूप से भूमिका निभाती हैं, यदि हमें अपने देश में महिलाओं के उज्जवल भविष्य को देखना है तो उन्हें शिक्षा अवश्य प्रदान करनी होगी। महिलाओं की शिक्षा समाज की स्थिति को सुधारने एवम परिवर्तित करने में एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में काम करता है। सुन्दरम, सिकर, एवं सुब्बुराज (2014), ने 'वुमेन्स इंपावरमेंट रोल ऑफ एजुकेशन' ने अपने शोध निष्कर्ष में प्राप्त किया कि यदि महिलाएं अधिक शिक्षित होंगी तो उनकी पहुंच रोजगार तक होगी। इससे उनके अपने स्वयं के आर्थिक संसाधनों को सुरक्षित करने की क्षमता में वृद्धि होगी। अध्ययन से पता चलता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जागरूक किया जाना चाहिए जिससे वे अंधविश्वासों को छोड़ सकें। ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं को विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रम जैसे कि हथकरघा, पोल्ट्री फार्म, मछली, खेती, डेयरी, भोजन, फैशन डिजाइनिंग, ब्यूटी पार्लर, आदि में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

## महिला साक्षरता की वर्तमान स्थिति

भारतीय संविधान के 86वें संविधान संशोधन द्वारा 6–14 वर्ष के बालकों के लिए

अनिवार्य एवं मुफ्त शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया गया है। सरकार विभिन्न योजनाओं के द्वारा जैसे- सर्व शिक्षा अभियान (SSA) विशेषकर वंचित ग्रामीण क्षेत्रों की बालिकाओं को प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से, RMSA माध्यमिक स्तर के लिये) के माध्यम से बालिकाओं की शिक्षा को बेहतर बनाने का प्रयास कर रही है। अत: विभिन्न स्तर पर महिला साक्षरता के लिए किये जा रहे प्रयासों के कारण महिलाओं की साक्षरता दर में वृद्धि हुई (सिंह 2009, शर्मा 2010). निम्नलिखित आंकड़े पुरुषों एवं महिलाओं की साक्षरता दर पर एक संक्षिप्त नजर डाल रहे हैं:

**तालिका-1**

**वर्ष 1951 से वर्ष 2011 तक पुरुष-महिला साक्षरता वृद्धि दर %**

| वर्ष | ग्रामीण | | | शहरी | | | समेकित | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | म. | पु. | योग | म. | पु. | योग | म. | पु. | योग |
| 1951 | 4.87 | 19.02 | 12.1 | 22.33 | 45.6 | 34.59 | 8.86 | 27.15 | 18.32 |
| 1961 | 10.1 | 34.3 | 22.5 | 40.5 | 66 | 54.4 | 15.35 | 40.4 | 28.31 |
| 1971 | 15.5 | 48.6 | 27.9 | 48.8 | 69.8 | 60.2 | 21.97 | 45.96 | 34.45 |
| 1981 | 21.7 | 49.6 | 36 | 56.3 | 76.7 | 67.2 | 29.76 | 56.38 | 43.57 |
| 1991 | 30.17 | 56.96 | 36 | 64.05 | 81.09 | 67.2 | 39.29 | 64.13 | 52.21 |
| 2001 | 46.7 | 71.4 | 59.4 | 73.2 | 86.7 | 80.3 | 53.67 | 75.26 | 64.83 |
| 2011 | 58.75 | 78.57 | 67.8 | 79.92 | 89.67 | 84.1 | 65.46 | 82.14 | 74.04 |
| **प्रतिशत वृद्धि** | **26%** | **10%** | **14%** | **9%** | **3%** | **5%** | **22%** | **9%** | **14%** |

स्रोत: सेन्सस ऑफ इंडिया, आफिस ऑफ द रजिस्ट्रार जनरल, इंडिया

तालिका-1 से पता चलता है कि जहां 1951 में पुरुषों की साक्षरता दर 27.15 प्रतिशत, तथा महिलाओं की 8.86 प्रतिशत थी वहीं 2011 में यह बढ़कर क्रमश: 82.14 प्रतिशत व 65.46 प्रतिशत हो गया। इससे यह पता चलता है कि महिलाओं की लगभग 34 प्रतिशत आबादी आज भी शिक्षा से दूर है।

## प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा

प्राथमिक शिक्षा में बच्चों को संप्रेषण के माध्यम से भाषा का ज्ञान कराया जाता है, उन्हें सामान्य मानव व्यवहारों में प्रशिक्षित किया जाता है। इन्हीं पर आगे की शिक्षा निर्भर करती है, यदि यह नींव मजबूत होती है, तो बच्चों की आगे की शिक्षा सुचारू रूप से चलती है। जहां तक माध्यमिक शिक्षा की बात है तो माध्यमिक शिक्षा, प्राथमिक और उच्च शिक्षा के बीच की कड़ी होती है। 15 अगस्त 2007 को देश के प्रधानमंत्री ने अपने भाषण में माध्यमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण की घोषणा की। उसके तुरंत बाद केंद्रीय

**तालिका-2**

**विद्यालयों में पंजीकृत 100 लड़कों पर लड़कियों की संख्या**

| वर्ष | प्राथमिक कक्षा (I-V) | उच्च प्राथमिक कक्षा (VI-VIII) | माध्यमिक कक्षा (IX-X) |
|---|---|---|---|
| 2000-01 | 78 | 69 | 63 |
| 2001-02 | 79 | 72 | 65 |
| 2002-03 | 88 | 78 | 70 |
| 2003-04 | 88 | 79 | 70 |
| 2004-05 | 88 | 80 | 71 |
| 2005-06 | 87 | 81 | 73 |
| 2006-07 | 88 | 83 | 73 |
| 2007-08 | 91 | 84 | 77 |
| 2008-09 | 92 | 89 | 78 |
| 2009-10 | 92 | 88 | 81 |
| 2010-11 | 92 | 89 | 82 |
| 2011-12 | 94 | 95 | NA |
| 2012-13 | 94 | 95 | 89 |
| 2013-14 | 93 | 95 | 90 |
| 2014-15 | 93 | 95 | 90 |

स्रोत: एजुकेशनल स्टैटिसटिक्स एट ए ग्लांस 2014 यू-डाइस स्टैटिसटिक्स 2014-15

सरकार ने मार्च 2009 में राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (RMSA) शुरू किया, निम्न आकड़े प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा में लड़कियों की स्थिति का उल्लेख कर रहे हैं।

तालिका संख्या-2 से पता चलता है कि 2000-01 के आंकड़ों के अनुसार प्रति 100 लड़कों की तुलना में प्राथमिक विद्यालयों में लड़कियो की संख्या 78, उच्च प्राथमिक में 69, व माध्यमिक विद्यालयों में 63 थी, वही यह संख्या 2013-14 में क्रमशः 93, 95, व 90 हो गयी। इससे यह पता चलता है कि लड़कियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है, मगर इसे लड़कों के बराबर ले जाने की आवश्यकता है।

**उच्च शिक्षाः** भारत की उच्च शिक्षा प्रणाली विश्व में संख्या के आधार पर चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद तीसरे स्थान पर है। लड़के-लड़कियों से संबंधित जानकारी निम्न तालिका से प्राप्त हो रही हैः

**तालिका-3**

**विश्वविद्यालयीय शिक्षा के प्रमुख विषयों में प्रति 100 लड़कों पर लड़कियों की संख्या**

| वर्ष | कला | विज्ञान | वाणिज्य | अभियांत्रिकी एवं तकनीकी | चिकित्सा |
|---|---|---|---|---|---|
| 2000-01 | 81.40 | 61.40 | 55.30 | 28.7 | 68.20 |
| 2001-02 | 77.80 | 64.20 | 63.10 | 33.1 | 68.40 |
| 2002-03 | 82.24 | 60.55 | 57.95 | 29.17 | 71.19 |
| 2003-04 | 85.70 | 75.90 | 51.20 | 17.5 | 72.50 |
| 2004-05 | 87.30 | 84.30 | 51.60 | 31.1 | 53.10 |
| 2005-06 | 77.70 | 71.20 | 65.20 | 36.1 | 90.1* |
| 2006-07 | 76.90 | 71.20 | 60.90 | 35.8 | 89.5* |
| 2007-08 | 79.60 | 71.00 | 63.53 | 39.3 | 79.66 |
| 2008-09 | 86.80 | 66.90 | 65.30 | 39.7 | 88.31 |
| 2009-10 | 86.00 | 72.70 | 67.30 | 40.3 | 90.90 |

स्रोतः डिपार्टमेंट ऑफ सेकेण्डरी एण्ड हायर एजुकेशन, मिनिस्ट्री ऑफ हयूमन रिसोर्स डेवलपमेंट
* डेन्टीस्ट्री, नर्सिंग, फार्मेसी, आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी सहित.

तालिका संख्या-3 से पता चलता है कि 2000-01 के आंकड़ों के अनुसार प्रति 100 लड़को की तुलना में 2009-10 में कला एवं चिकित्सा विषय में लड़कियों की संख्या मे वृद्धि हुई है, फिर भी यह काफी कम है। आंकड़ों से यह भी पता चलता है कि विज्ञान, अभियांत्रिकी एवं तकनीकी विषय में लड़कियों की संख्या लड़कों की संख्या की लगभग आधी है अत: इसमें अत्यधिक सुधार की आवश्यकता है, जिससे उनकी संख्या लड़को के बराबर हो सके।

**शिक्षा के द्वारा महिला सशक्तिकरण**

'महिला सशक्तिकरण' के बारे में जानने से पहले हमे ये समझ लेना चाहिये कि हम 'सशक्तिकरण' से क्या समझते हैं। 'सशक्तिकरण' से तात्पर्य किसी व्यक्ति की उस क्षमता से है जिससे उसमें ये योग्यता आ जाती है कि वह अपने जीवन से जुड़े सभी निर्णय स्वयं ले सके। महिला सशक्तिकरण में भी हम उसी क्षमता की बात कर रहे हैं, जहाँ महिलाएँ परिवार और समाज के सभी बंधनों से मुक्त होकर अपने निर्णयों की निर्माता खुद हो। महिला सशक्तिकरण को बेहद आसान शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है कि इससे महिलाएँ शक्तिशाली बनती हैं और परिवार एवं समाज में अच्छे से रह सकती हैं। समाज में उनके वास्तविक अधिकार को प्राप्त करने के लिये उन्हें सक्षम बनाना महिला सशक्तिकरण है। (वशिष्ठ, 2010) देश, समाज और परिवार के उज्जवल भविष्य के लिये महिला सशक्तिकरण बेहद जरूरी है। महिलाओं को स्वच्छ और उपयुक्त पर्यावरण की जरूरत है जिससे कि वह हर क्षेत्र मे अपना खुद का फैसला ले सके चाहे वह स्वयं, देश, परिवार या समाज किसी के लिये भी हो। देश को पूरी तरह से विकसित बनाने तथा विकास के लक्ष्य को पाने के लिये एक जरूरी हथियार के रूप मे है महिला सशक्तिकरण। महिला सशक्तिकरण के द्वारा ये संभव है कि एक मजबूत अर्थव्यवस्था के पुरुषवादी प्रभाव वाले देश को महिला-पुरुष समानता वाले देश के रूप में बदला जा सकता है।

शिक्षा प्राप्ति के बाद आज स्थिति यह है कि राजनीति, वैज्ञानिक संस्थान, पर्वतारोहण, क्रीड़ा-जगत, पुलिस, सेना आदि कोई भी क्षेत्र ऐसा नही है जहाँ नारी का प्रवेश न हुआ हो। आर्थिक स्वावलबन ने उनके आत्मविश्वास मे वृद्धि की है और वह किसी भी समस्या से जूझने के लिए तत्पर है। जिन लोगों को नारी की कार्यक्षमता मे अविश्वास था, वे भी अब उसकी योग्यता के कायल होने लगे हैं। यही कारण है कि नौकरी पेशा पुरुष

और नारियों के वेतनमान में कोई अंतर नहीं दिखाई देता। इसमें कोई संदेह नहीं कि आज शिक्षा के माध्यम से नारी की स्थिति गत शताब्दी की नारियों की अपेक्षा उन्नत हुई। आज की महिला ने अपनी शक्ति को पहचाना है। राजनीति जैसे पुरुष प्रधान क्षेत्र मे भी वे अपनी सशक्तता दर्ज करा रही हैं। अनेक महिलाएं आज सांसद एवं विधानसभा की सदस्य हैं। भारत के कई राज्यों में महिलाएं मुख्यमंत्री का दायित्व अत्यत कुशलतापूर्वक निर्वहन कर रही हैं। इस प्रकार समय के परिवर्तन के साथ शिक्षा जैसे सशक्त माध्यम से आज की महिला स्वयं सशक्त बनकर विभिन्न व्यवसायों एवं सेवाओं से जुड़ती जा रही हैं तथा कुशलतापूर्वक विभिन्न पदों पर आसीन होकर निस्संदेह प्रगति की ओर अग्रसर हो रही हैं। हम निम्नलिखित बिन्दुओं के द्वारा भी महिला सशक्तिकरण में शिक्षा के योगदानों को समझ सकते हैं:

1. महिलाओं की शिक्षा, परिवार और समाज में बदलाव ला रही है, यह बाल विवाह, दहेज प्रथा आदि कु-परंपराओं को दूर करने में भी मदद कर रही है।
2. शिक्षा महिलाओं के लिए विभिन्न रोजगार के अवसर खोल रही है तथा आर्थिक गरीबी हटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है, जिससे वह पुरुषों के साथ मिलकर अपने परिवार को सहयोग करने में आज सक्षम हो चुकी हैं।
3. शिक्षा महिलाओं को व्यक्तिगत रूप से कार्य करने की बजाय समूह में कार्य करने को बढ़ावा देती है, यह उन्हें सबसे बेहतर कैरियर विकल्प चुनने में सहायता कर रही है।
4. हर महिला की अपनी आकांक्षाएं हैं जो उच्च या निम्न हो सकती हैं, लेकिन शिक्षा उनकी रुचि और क्षमता के अनुसार आकांक्षाओं को संतुलित बनाए रखने में मदद करती है जिससे उसे अपने काम का सही क्षेत्र चुनने में मदद मिल रही है।
5. महिलाओं की शिक्षा उनकी भावनाओं को प्रभावी संचार के माध्यम से किसी भी स्तर के विवादों और समायोजन समस्याओं को सुलझाने के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।
6. एक शिक्षित महिला हमेशा अपने बच्चों परिवार समाज और राष्ट्र के लिए दिशा निर्देशिका का कार्य करती है।

7. महिला शिक्षा लिंगानुपात में सुधार एवं जनसंख्या नियंत्रण में सहयोग करने में सहायता दे रही है।
8. शिक्षा महिलाओं को खेल, व्यायाम, स्वास्थ्य संबंधी पहलूओं के बारे में जानकारी देकर उन्हें शारीरिक रूप से मजबूत बनने हेतु शक्ति देती है। यह उनकी मानसिक स्वास्थ्य के लिए भी लाभकारी होता है।
9. शिक्षा के द्वारा महिलाओं को वित्तीय स्वायत्तता एवं निर्णय लेने की शक्ति प्राप्त हो रही है।
10. मीडिया के संपर्क में आने से उन्हें देश, समाज एवं घरेलू हिंसा से बचने की जानकारी प्राप्त हो रही है।
11. शिक्षा के द्वारा महिलाओं को यह पता चल जाता है कि किसी भी कारण से महिलाओं को मारना पीटना अपमानित करना गलत है इसके लिए कानूनी अधिकार बने हुए हैं।
12. शिक्षा के द्वारा महिला राजनीति में भी अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है।

## निष्कर्ष

स्वतंत्रता के बाद से भारत सरकार पुरुष एवं महिला, दोनों के सर्वांगीण विकास पर लगातार ध्यान दे रही है। विशेषत: महिलाओं की शिक्षा व्यवस्था एवं सशक्तिकरण पर अत्यधिक जोर दिया जा रहा है। महिलाएं भारतीय जनसंख्या की आधी आबादी हैं, अत: यदि उनको शिक्षित नहीं किया गया तो राष्ट्र के विकास का एक पहिया अवरुद्ध हो जाएगा जिससे देश का विकास भी अवरुद्ध हो जाएगा। अत: देश की सरकार एवं अन्य सरकारी, गैर सरकारी संगठन महिलाओं की शिक्षा पर अत्यधिक ध्यान दे रहे हैं। यहां तक कि शिक्षा के अधिकार के तहत शिक्षा के लिए किताबें, गणवेश, मुफ्त कर दिया गया है। हम यह जानते हैं कि यदि महिलाएं शिक्षित हो जाएंगी तो सशक्त बनेंगी और देश के विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादक भूमिका निभाएंगी। अत: शिक्षा ही वह माध्यम है जो महिलाओं के सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है, जिससे देश व समाज, दोनों का विकास होगा।

## *संदर्भ*

अहमद, तौफीक, सिन्हा, अंबालिका एवं शास्त्री, राजेश कुमार (2016). वूमेन एंपावरमेंट स्किल डेवलपमेंट एंड वोकेशनल एजुकेशन. एस.एम.एस. वाराणसी: वॉल्यूम-2 अंक-2.

ऑल इंडिया सर्वे ऑन हायर एजुकेशन (2015–16). एम.एच.आर.डी. डिपार्टमेंट ऑफ हायर एजुकेशन. नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ एजुकेशनल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन. http://www.nuepa.org

एजुकेशन फॉर ऑल: टूवर्ड्स क्वालिटी विथ इंक्विटी (2016). एम.एच.आर.डी. नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ एजुकेशनल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन. http://www.nuepa.org.

एजुकेशनल स्टैटिस्टिक्स एट ए ग्लान्स (2016). एम.एच.आर.डी. डिपार्टमेंट ऑफ स्कूल एजुकेशन एंड लाइटरेसी. न्यू दिल्ली.

एलीमेंट्री एजुकेशन इन इंडिया (2015–16). नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ एजुकेशनल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन. http://www.nuepa.org

कृष्णकांत, एस. (2001). इक्कीसवीं सदी की ओर.(प्रथम संस्करण). नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

गौतम, कृपा (2010). भारतीय स्त्री: लिंग अनुपात एवं सशक्तिकरण. दिल्ली: मिश्रा पब्लिशर एंड डिस्ट्रीब्यूटर.

चिकाटे, उषा., एवं ठाकुर, गोपाल कृष्ण (2017). कैदी महिलाओं के बच्चों की शैक्षिक स्थिति का अध्ययन. स्कालर्ली रिसर्च जर्नल ऑफ इंटरडीसिप्लिनरी स्टॅडीज. वॉल्यूम–4 अंक–36.

तिवारी, स्वाति (2007). मैं औरत हूँ– मेरी कौन सुनेगा: महिला और कानून. (प्रथम संस्करण). नई दिल्ली: संजीव प्रकाशन.

त्रिपाठी, एम. (2010). भारत में मानवाधिकार. (प्रथम संस्करण). नई दिल्ली: ओमेगा पब्लिकेशन्स.

नायर, निशा (2010). वुमेन्स एजुकेशन इन इंडिया: ए सिचुएशनल स्टॅडी. आई.एम.जे. वॉल्यूम 1 अंक 4. नायक, पुरुषोत्तम एवं महन्ता, बिदिशा (2009), वुमेन्स इंपावरमेंट इन इंडिया. एस.एस.आर.एन. इलेक्ट्रानिक जर्नल.

निरूपमा (2010). नारी: शिक्षा साधन और स्वास्थ्य. नई दिल्ली: अनुपम प्रकाशन.

भट, राउफ अहमद (2015). रोल ऑफ एजुकेशन इन द एंपावरमेंट ऑफ वूमेन इन इंडिया. जर्नल ऑफ एजुकेशन एंड प्रैक्टिस: वॉल्यूम 6 अंक 1.

मौर्य, शैलेन्द्र. (2012). महिला मानवाधिकार: ज्वलंत मुद्दे एवं. प्रमुख व्यवस्थाएं. (प्रथम संस्करण). जयपुर: अविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स.

वर्मा, अंजली (2009). भारत में कार्यशील महिलाएं. (प्रथम संस्करण). नई दिल्ली: ओमेगा पब्लिकेशन्स.

वशिष्ठ, सरिता (2010). महिला सशक्तिकरण. (प्रथम संस्करण). दिल्ली: कल्पना प्रकाशन.

शर्मा, नीलमणि (2010). आधे भारत का संघर्ष. (प्रथम संस्करण). नई दिल्ली: संजीव प्रकाशन.

सिंह, एम.एन. (2009). महिला सशक्तिकरण का सच. नई दिल्ली: ओमेगा पब्लिकेशन्स.

सिंह, खुशबू (2016), 'इंपार्टेन्स ऑफ एजुकेशन इन इंपावरमेंट ऑफ वोमेन्स इन इंडिया'. मदरहुद इंटरनेषल जर्नल ऑफ मल्टीडीशिप्लिनरी रिसर्च एंड डेवलपमेंट. वॉल्यूम 1 अंक 1.

सिंह, निशांत (2009). भारतीय महिलाएं : एक सामाजिक अध्ययन. (प्रथम संस्करण). दिल्ली: ओमेगा पब्लिकेशन्स.

सुन्दरम, शुनमुघा., सिकर, एम., एवं सुब्बुराज, ए.(2014), वुमेन्स इंपावरमेंट: रोल ऑफ एजुकेशनए आई.जे.एम.एस.एस., वॉल्यूम-2 अंक-12.

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 24, अंक 3, दिसंबर 2017

*समीक्षा लेख*

# शिक्षा के नाम पर हो रहे बदलाव को समझना

**कौशलेन्द्र प्रपन्न***

ऋतु बाला और राघवेंद्र प्रपन्न, **शिक्षा के नाम पर,** प्रकाशक–यश पब्लिकेशंस, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032, प्रथम संस्करण : वर्ष 2014, ISBN: 978–93–85698–46–8; मूल्य : 300 रुपये

राघवेंद्र प्रपन्न और ऋतु बाला, **ज्ञान का शिक्षण शास्त्र,** प्रकाशक–यश पब्लिकेशंस, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032, प्रथम संस्करण : वर्ष 2014, ISBN: 978–93–85698–45–1; मूल्य : 300 रुपये

आज़ादी के बहत्तर सालों में शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन बहुत तेजी से घटित हुए हैं। ये बदलाव कई मर्तबा सूक्ष्म आंखों से ओझल सी हो जाते हैं। लेकिन शिक्षा में हो रहे परिवर्तनों को ज़्यादा समय तक नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। शैक्षिक परिवर्तनों का तो मंज़र यह भी है कि जहां हमने कई सारी समितियां, आयोग, नीतियों के निर्माण किए। वहीं उसी अनुपात में वैश्विक स्तर पर शैक्षिक बेहतरी के लिए ये सामूहिक घोषणाएं भी कीं कि हम नागर समाज प्रण करते हैं कि देश के तमाम बच्चे बुनियादी शिक्षा हासिल कर लेंगे। पहले पहल सेनेगल में 1990 में विभिन्न देशों के राष्ट्राध्यक्ष मिले और घोषणा की कि हम अपने–अपने देश में 2000 तक सभी बच्चों को बुनियादी शिक्षा मुहैया करा देंगे। लेकिन जब 2000 में डकार में सम्मेलन हुआ तो पाया गया कि अभी हम अपने लक्ष्य से काफी दूर हैं। और हमने इस समय सीमा को बढ़ाकर 2015 किया। इस प्रकार घोषणाओं के अंबार लगाते रहे और शिक्षा इन अंबारों के नीचे दबती चली गई। गौर करें तो 2000 और 2002 की

*शिक्षा एवं भाषा शिक्षणशास्त्र विशेषज्ञ

तारीख़ बेहद महत्वपूर्ण है। क्योंकि हमें तय लक्ष्य को पाने के लिए अपने संविधान में संशोधन भी करना था। सो 86वें संशोधन के बाद शिक्षा मौलिक अधिकार के घेरे में आ पाई। हमने यह भी घोषणा की कि अब हम 2030 तक सभी बच्चों को शिक्षा के मौलिक अधिकारों से वंचित रहीं रखेंगे। देखना यह है कि क्या यह घोषणा भी अगली तारीख़ तक टाली तो नहीं जाएगी। लेकिन सवाल अभी भी वहीं की वहीं है कि यदि हमारे पास पर्याप्त रणनीति, योजना और शैक्षिक परिदृश्य को बदलने की इच्छा शक्ति नहीं है तो शायद तमाम सुविधाओं और बुनियादी इंतज़ामात के बावजूद सूरते ए हाल नहीं बदल पाते। 1986 के बाद नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति निर्माण की प्रक्रिया पिछले तीन सालों से सुनी जा रही है लेकिन वह अभी भी अकादमिक जगत से ख़ासा दूर है। ऐसे में यह एक महज संयोग ही माना जाएगा कि शिक्षा पर हमपेशा सुश्री ऋतु बाला और श्री राघवेंद्र प्रपन्न ने 'शिक्षा के नाम पर' और 'ज्ञान का शिक्षण शास्त्र' पुस्तकें शिक्षा जगत को दिए हैं। इन दोनों ही पुस्तकों के लेखकद्वय सुश्री ऋतु बाला और राघवेंद्र प्रपन्न निश्चित ही बधाई के पात्र हैं। क्योंकि इन दोनों ने शिक्षा में पिछले दो दशकों से होने वाली हलचलों को ठहर कर पकड़ने और समझने के लिए विभिन्न दस्तावेजों और अधययनों को अपनी इन किताबों में शामिल किया है। लेखकद्वय ने शैक्षिक जगत से संबद्ध विभिन्न दस्तावेजों एवं अंतरराष्ट्रीय-राष्ट्रीय दबावों और आर्थिकी पहलुओं की परतों को खोलने का प्रयास भी किया है। शिक्षा के नाम पर आजादी से पूर्व और आजादी के बाद कितना और किस स्तर के काम हुए हैं यह जानना अपने आप में बहुत ही दिलचस्प होगा। शिक्षा के छात्र और शिक्षा में दिलचस्पी रखने वालों के लिए शिक्षा का इतिहास और राजनीति काफी रुचिकर और रहस्यमय भी रहा है। रहस्यमय इसलिए क्योंकि राजनीति शिक्षा में हस्तक्षेप कर शिक्षा की धार को कुंद करने की ताकत रखती है और इस ताकत को शिक्षा पर आजमाती भी रही है। यह समझना जरा मुश्किल काम है। हमें पाठ्यपुस्तकों, पाठ्यचर्याओं और पाठ्यक्रमों के निर्माण प्रक्रिया को किस प्रकार राजनीतिक हस्तक्षेप शिक्षा के उद्देश्य को भ्रमित करती है इसकी झलक हमें ज्ञान का शिक्षा शास्त्र पुस्तक के पहले पाठ में मिलता है। ''भारतीय स्कूली शिक्षा के संदर्भ में सामाजिक विज्ञान के विमर्श की शिक्षा शास्त्रीय विवेचना'' पाठ में विज्ञान की किताबों में किस तरह सन् 2000, 2002 में पाठ्यपुस्तकों एवं पाठ्यचर्याओं को एक विशेष विचारधारा ने अपनी वैचारिक विस्तार के लिए किताबों को औजार के तौर पर इस्तमाल किया इसकी झांकी सप्रमाण मिलती है। बतौर इसी पाठ से एक और उदाहरण प्रस्तुत है – ''सन् 1988 से 2001 के समाज विज्ञान के पाठ्यक्रम का मिलान करने पर यह साफ हो जाता है कि पाठ्यपुस्तकों

की यह दुर्दशा महज संयोग, असावधानी तथा गैरजानकारी का परिणाम नहीं है बल्कि सन् 2002 का पाठ्यक्रम सैद्धांतिक तौर पर ही इस बात को मान्यता नहीं देगा कि विद्यार्थी, समाजविज्ञान को समाजशास्त्रीय पद्धति से पढ़ सके।''

हम राजनीति को शिक्षा से अलगाकर शिक्षा की प्रकृति को समझने का दावा कर सकते हैं। सर्वांगीण शैक्षिक समझ की वकालत तभी संभव है जब हम शिक्षा की सामाजिक, राजनीति, परिवेशीय एवं आर्थिक भूगोल को अपनी नजरों से गुजारें और उन तमाम पहलकदमियों, हलचलों को समझने का प्रयास करें जिसे हम इतिहास के हिस्से डाल देते हैं। शैक्षिक जगत का भूगोल भी रोजदिन न सही किन्तु गतिमान तो है ही। परिवर्तन की प्रक्रिया यहां भी घटित हो रही है। शैक्षिक भौगोलिक जमीन भी तेजी से खिसक रही है लेकिन क्योंकि हम गति में हैं इसलिए उन परिवर्तनों से नवाकिफ हैं। जिनका परिणाम आज नहीं बल्कि दस बीस साल बाद हमारी पीढ़ी को भुगतनी होगी। तक्सीम के तकरीबन सत्तर साल बाद भी शिक्षा का चरित्र संदिग्ध ही रहा है। शिक्षा किसके लिए, किसके द्वारा, किसको दिया जा रहा है इस गुत्थी को सुलझाने में हम असफल रहे हैं।

शैक्षिक वैश्विकरण, उदारीकरण, नव उदारवाद, बाजारीकरण के दौर में हमें शिक्षा की प्रकृति को समझना बेहद जरूरी है। न केवल शैक्षिक इतिहास बल्कि शिक्षा-समाज, शैक्षिक-राजनीति, शैक्षिक आर्थिकी को भी समझने का प्रयास करना होगा तभी हम वर्तमान शैक्षिक चरित्र और प्रकृति को कोसने की बजाए शिक्षा से जुड़े उन तमाम घटकों को सुधारने की बात करेंगे जिन्होंने शिक्षा को गढ़ने में अहम भूमिका निभाई है। दूसरे शब्दों में कहें तो शिक्षा के इतिहास, समाज, चरित्र, वैश्विक बुनावट को समझना होगा। 'शिक्षा के नाम पर' और 'ज्ञान का शिक्षाशास्त्र' पुस्तकों का स्वागत होना चाहिए क्योंकि इन दो किताबों में लेखकद्वय राघवेंद्र प्रपन्न और ऋतु बाला ने बड़ी ही शिद्दत से शिक्षा के वर्तमान, इतिहास एवं समाज से टकराने और खरोंच मारने की कोशिश करते हैं।

शिक्षा की मुख्यधारा में किस तरह से शैक्षिक चरित्र निर्धारित करने वाले नीतिकारों और राजनीतिकों ने शैक्षिक विमर्श और पाठ्यपुस्तकों से वंचितों, दलितों, अनुचित जाति और जनजातियों को हाशिए पर रखा। इस अंधोरे कोने की ओर ऋतु बाला द्वारा लिखित आलेख, ''स्कूली पाठ्यपुस्तकों में दलित-वंचित वर्ग की छवि'' में विस्तार से चर्चा मिलती है कि किस प्रकार हमारे पाठ्यपुस्तकों में दलितों, वंचित वर्गों को पढ़ाया जाता है और उससे बच्चों में किस प्रकार की छवियां बनती हैं। लेखिका ने देश के चार राज्यों–

बिहार, राजस्थान, हरियाणा और दिल्ली के हिन्दी की किताबों में वर्णित वंचितों और अनुसूचित जाति और जनजातियां की छवियों को उभारने वाले चित्रों का विश्लेषण किया है जो आंखें खोलने वाला अध्ययन है। बतौर लेखिका– ''चार राज्यों की 16 पाठ्यपुस्तकों का अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुंचाता है कि अनुसूचित जनजाति का एक भी महिला अथवा पुरुष पात्र ऐसा नहीं है जिसकी चर्चा समूह तथा जनजाति विशेष से हटकर एक व्यक्तित्व के रूप में की गई है। जबकि आदिवासी समाज में कई ऐसे ऐतिहासिक चरित्र हुए हैं जो लोकप्रिय रहे हैं तथा आज भी जीवंत हैं मसलन– अकेले बिहार के रांची जिले में 1789 से 1920–21 तक तकरीबन छः चर्चित विद्रोह हुए हैं। परंतु इनका जिक्र अध्ययन में शामिल बिहार की पाठ्यपुस्तकों में नहीं मिलता।'' ऋतु बाला इसी पाठ में आगे लिखती हैं कि चार राज्यों की 16 पाठ्यपुस्तकों; कक्षा 6 से 8 हिन्दी विशयुद्ध के 2268 पृष्ठों में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति की कुल हिस्सेदारी 71 पृष्ठों की पायी गयी। एक और ध्यान खींचने वाले तथ्य की ओर खिंचती हैं ऋतुबाला लिखती हैं कि इन चार राज्यों की हिन्दी की सोलह पाठ्यपुस्तकों में अंबेडकर के कुल तीन चित्र हैं जिसमें इन्हें वकील की पोषाक में दिखाया गया है। कोई बिंब, चिह्न, प्रतीक व वाक्यांश ऐसा नहीं है जो बतला सके कि ये अनुसूचित जाति से संबंधित हैं। ऋतुबाला माइकल एप्पल की स्थापना को कोट करते हुए लिखती हैं कि महिलाओं तथा अल्पसंख्यकों की विशिष्टता क्या है इसकी कोई ठोस विवेचना किए बगैर ही पाठ्यपुस्तकों में महिलाओं और अल्पसंख्यकों के योगदान को सीमित कर दिया जाता है। लेखिका बड़ी ही शिद्दत से अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जनजातियों आदि की छवियों की पड़ताल इस पाठ में करती हैं। उन्होंने अपने ही अध्ययन के हवाले से हम नागर समाज का ध्यान उस तथ्य की ओर भी खींचा हैं कि हमारी पाठ्यपुस्तकें ही हद तक इन वंचितों के हित और सकारात्मक छवि निर्माण में मददगार साबित होती हैं या फिर छवि भंजक की भूमिका निभाती हैं।

राघवेंद्र प्रपन्न ''भाषा की शिक्षा शास्त्रीय मीमांसा'' पाठ में विस्तार से चर्चा करते हैं कि किस प्रकार 1988, 2000 और 2005 की भाषायी विमर्श और स्थापनाओं में बुनियादी अंतर देखने को मिलता है। इससे हमें भाषायी शिक्षा के शैक्षिक दर्शन की झलक मिलती है। जहां एक ओर 1988 की भाषायी शिक्षा की नीति लगभग एक धरातल पर नजर आती है वहीं 2000 की भाषायी स्थापना में बुनियादी फांक नजर आता है। मसलन 2000 की पाठ्यचर्या स्पष्ट मानती है– ''प्राथमिक स्तर के प्रथम दो वर्षों में बच्चों को सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना और सोचने जैसे मूल कौशलों को

विकसित करने में मदद करनी होगी। उच्चारण के निर्धारित मानकों के अनुसार मानकीकरण की प्रकिया पर भी विशेष ध्यान देना होगा।'' वहीं लेखक 2005 की पाठ्यचर्या के हवाले से कहते हैं– ''कक्षा 3 के बाद मौखिक और लिखित माध्यमों को उच्च स्तरीय संवाद कौशल और आलोचनात्मक चिंतन के विकास के प्रयास हों।'' राघवेंद्र प्रपन्न इसी पाठ में अन्य लेखकीय विचारों और भाषायी मान्यताओं को भी संदर्भित करते हैं। वे जेम्स ब्रिटेन की पंक्तियां उद्धृत करते हुए लिखते हैं- ''आरंभिक वर्षों में बोलने, प्रतिक्रिया करने, विविध तरीकों से अभिव्यक्त करने के मौके भाषा विकास के लिए महत्वपूर्ण बुनियादी आधार है न कि मानकीकृत भाषा के अनुसार वर्तनी एवं भाषा सुधार।'' इस तरह से लेखक विभिन्न भाषा समालोचकों तथा भाषाविद्ों के हवाले से विभिन्न पाठ्यचर्याओं में भाषायी दृष्टि और शिक्षा स्थापनों के अंतरों को रेखांकित करने का प्रयास करता है। विभिन्न हिन्दी के पाठ्यपुस्तकों की शिक्षाशास्त्रीय हकीकतों की ओर ध्यान दिलाते हुए लेखक उदाहरणों सहित इस तथ्य की स्थापना करता है कि भाषायी शिक्षा घंटी बदलू तर्ज पर हो रही हैं।

वहीं ऋतु बाला अपने आलेख ''भारतीय शिक्षा–अधिगम प्रक्रिया में संपूर्ण सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ का महत्व'' में विस्तार से बच्चों की सीखने की प्रक्रिया की चर्चा करती हैं। इस संदर्भ में भारतीय परिवेश की चर्चा तो करती ही हैं। साथ ही विदेशी चिंतकों को भी बेहतर तरीके से संदर्भगत कोट करती हैं मसलन वाडगाट्स्की के उपागम को रेखांकित करते हुए लिखती हैं कि ''बच्चा जिन सामाजिक परिस्थितियों में विकसित होता है वह न केवल जटिल मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं की विषयवस्तु बल्कि उसके तंत्र पर भी अपना चिह्न अनिवार्य रूप से छोड़ता है।''

अब हम दूसरी किताब शिक्षा के नाम पर नजर डालें तो पाएंगे कि लेखकद्वय ऋतुबाला और राघवेंद्र प्रपन्न ने शिक्षा जगत में घटने वाली घटनाओं को केंद्र में लाते हैं। समय समय पर शिक्षा में कब और किस तरह की घटनाएं घटी हैं इसकी सुगबुगाहटों को इस किताब में सुना जा सकता है। शिक्षा के नाम पर किताब में तकरीबन चालीस निबंधों को शामिल किया गया है। इन निबंधों को समय समय पर विभिन्न शैक्षिक परिघटनाओं पर सामयिक टिप्पणियों के तौर लिखा गया है जिसे किताब के रूप में लाने से पहले पुनर्पाठ के तौर पर प्रस्तुत किया गया है। इन लेखों को विभिन्न अखबारों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए लिखा गया है। इसलिए स्थान और समय को ध्यान में रखते हुए कायिक तौर पर छोटे आकार में देखे जा सकते हैं। लेकिन आकार में छोटा होने का अर्थ

यह नहीं है कि कहीं भी किसी कोण से कमतर हों। हालांकि लेखकद्वय की पहली पुस्तक ज्ञान का शिक्षणशास्त्र ज्ञान निर्माण और शैक्षिक अकादमिक विमर्शों को शामिल करने की वजह से पाठों की लंबाई विस्तार की दृष्टि से पाठकों को ठहर कर पढ़ना होगा। लेकिन शिक्षा के नाम पर किताब में स्वतंत्र रूप से लिखे गए लेखों को अलग-अलग कर भी पढ़ सकते हैं। ऋतु बाला अपने लेख 'तुम्हारा तो हो जाएगा' में लिखती हैं कि किस तरह से समाज में लडकियों को अनुसूचित जाति के होने के नाते आरक्षण के व्यंग्यबाण सुनने होते हैं। इसके पीछे की मानसिकता की परतें खोलते हुए लिखती हैं कि शिक्षण संस्थाएं अपने सामाजिक सरोकारों के लिहाज से विकास के हाशिए पर खड़े लोगों के लिए न्यूनतम संवेदना विकसित करने में असफल रही हैं। ऋतु बाला 'पाठ्यपुस्तकों के अंबेडकर' में लिखती हैं कि किस प्रकार हमारे पाठ्यपुस्तकों में अंबेडकर की छवि को उकेरा गया है।

वहीं राघवेंद्र प्रपन्न का लेख– 'शिक्षक और छात्र का रिश्ता' एक अप्रत्यक्ष शैक्षिक सत्ता की ओर पाठकों का ध्यान खींचते हैं। जब बच्चा कहता है कि फिर आपको पता ही क्या हैं? इस पर शिक्षकीय सत्ता बाहर आता है कि तुम मेरा अकादमिक रिकार्ड जानते हो? मैंने कहां-कहां से पढ़ाई की? किस तरह से शिक्षक हमेशा अपनी सत्ता बच्चों से अलग रखने का प्रयास करता है और जब कोई छात्र इस सत्ता पर सवाल उठता है तब शिक्षक बौखला उठता है।

इस भारतीयता से अनजान पाठ में राघवेंद्र प्रपन्न लिखते हैं कि किस प्रकार हिन्दी के नागार्जुन, त्रिलोचन जैसे लेखक स्कूली शिक्षण से बाहर हैं। शिक्षकों को यदि कोई चिंता होती है तो बस पाठ को पूरा कराना है। नागार्जुन के देहांत पर सुबह की सभा में कैसे सभी मौन हैं और उन कवि से अपरिचित शिक्षक समाज। इस ओर ठहर कर लेखक विचार करते हैं। साथ ही किस तरह की भारतीयता का परिचय हमारा पाठ्यपुस्तक करा रहा है। इसकी झलक भी हमें मिलती है।

पूर्वग्रहों के पाठ में ऋतु बाला दलितों, वंचितों के समाज को कैसे पाठ्यपुस्तकों से सोची समझी रणनीति के तहत बाहर किया गया है इस तरफ एक समझ का झरोखा खोलती हैं। विभिन्न हिन्दी के पाठ्यपुस्तकों में कितना प्रतिशत स्थान दलितों, वंचितों को मिला है इस ओर पाठकों को अध्ययन की प्राप्ति से रू-ब-रू होने का मौका मिलता हैं।

शिक्षा के नाम पर पुस्तक में हालांकि प्रथम लेखिका ऋतु बाला और दूसरे स्थान पर राघवेंद्र प्रपन्न का नाम है। लेकिन लेखों के अनुपात पर नजर डालें तो एक विषमता यहां

भी दिखाई देती है। जहां राघवेंद्र प्रपन्न के लेखों की संख्या 29 के आसपास है वहीं ऋतु बाला जी के लेखों की संख्या बीस से भी कम हैं। क्या ऐसा सोच समझ कर किया गया या फिर अनजाने में ऐसा हुआ लेकिन यह बात अखरती है कि इस किताब की प्रथम लेखिका ऋतुबाला जी के ही लेखों की संख्या कम हैं। हालांकि संख्या से ज्यादा गुणवत्ता की बात की जाए तो इनके लेख कई दूसरे लेखों पर भारी दिखाई देते हैं।

जहां तक किताब की भाषा और शैली की बात करें तो यथा नाम तथा भाषा कहना उचित लगता है। क्योंकि शिक्षा के दार्शनिक और सामाजिक चरित्र की विवेचना काव्य भाषा में नहीं हो सकती। पाठकों को इसके लिए भाषायी तौर पर भी खुद को तैयार करना होगा। इतना ही नहीं बल्कि शिक्षा की गहरी समझ पाने के लिए विभिन्न दस्तावेजों, किताबों, उदाहरणों को समझने के लिए समय भी निकाल कर पढ़ना होगा। भाषा गंभीर और सामान्य से हटकर भी मिलेंगी। खासकर जब ज्ञान का शिक्षणशास्त्र पुस्तक से गुजरेंगे। वहीं शिक्षा के नाम पर किताब की भाषा और वाक्य विन्यास साधाारण और अखबारी हैं। वहीं ज्ञान का शिक्षणशास्त्र की भाषा पूरी तरह से अकादमिक हिन्दी मानी जाएगी।

और अंत में 'शिक्षा के नाम पर' और 'ज्ञान का शिक्षणशास्त्र' दोनों ही किताबें अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार अलहदा हैं। दोनों की विषयवस्तु और प्रस्तुति भी भिन्न हैं। लेकिन शिक्षा में दिलचस्पी रखने वालों के लिए ये दो किताबें शिक्षा की दुनिया में प्रवेश द्वार के तौर पर काम आ सकने की क्षमता रखती हैं।